कुरुक्षेत्र

अप्रैल 1990 मूल्य दो रुपये

सामाजिक व[illegible]
पर विशेष

वृक्षारोपण के लिए आवश्यक पौध आसानी से उपलब्ध कराना सामाजिक वानिकी कार्यक्रम की सफलता के लिए आवश्यक है।

वर्ष—35, अंक 6, चैत्र-वैशाख-1912

कुरुक्षेत्र

सम्पादक [illegible]
सहायक सम्पादक [illegible]
उप सम्पादक [illegible]

उत्पादन अधिकारी : [illegible]
आवरण पृष्ठ की [illegible]
साज सज्जा : [illegible]
चित्र [illegible]

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

एक प्रति : 2.00 रु.
वार्षिक चंदा : 20 रु.

विषय सूची

सामाजिक वानिकी — 2
डा. कु. पुष्पा अग्रवाल

वृक्षारोपण और पर्यावरण — 6
प्रो. जी. सुंदर रेड्डी

ग्रामीण विकास में वृक्षारोपण का योगदान : एक अध्ययन — 9
कैलाश चन्द्र

सामाजिक वानिकी की आवश्यकता क्यों? — 11
सुनीता टंडन

सामाजिक वानिकी और गांव — 15
सुरेन्द्र द्विवेदी

सघन वन ही प्रदूषण पी जाते हैं — 18
जगदीश चन्द्र शर्मा

वन विनाश के दुष्परिणाम — 20
गणेश कुमार पाठक एवं अंजनी कुमार सिंह

ग्रामीण विकास में सामाजिक वानिकी की भूमिका — 24
डा. सहबदीन मौर्य एवं श्रीमती गायत्री देवी

वानिकी की विसंगतियां — 27
शुकदेव प्रसाद

वन संरक्षण की आवश्यकता — 29
एल. आर. शर्मा

वृक्षारोपण (कविता) — 30
अवधकिशोर सक्सेना

पंचायतों के माध्यम से वृक्षारोपण — 31
खजान सिंह

सामाजिक वानिकी—एक विश्लेषण — 33
नरेश बहादुर श्रीवास्तव

वृक्षारोपण में भूमि विकास बैंक की भूमिका — 36
विजय कुमार कंसटा

वन और मानव — 38
सेवा सिंह सायवाल

सामाजिक वानिकी का महत्व — 41
डा. विजय लक्ष्मी गौड़

पर्यावरण और सामाजिक वानिकी — 43
अंकुश्री

रामराज्य की ओर — 46
इन्दिवजल धस्माना

अज्ञानता और शोषण का सजीव चित्रण है—सवा सेर गेहूं — 47
मदन मोहन

वनों का राष्ट्रीय जीवन में महत्व — 48
हरिश्चन्द्र सिंह

पुस्तक समीक्षा — 51
डा. प्रेम प्रकाश भाटिया

गुणकारी कन्द—प्याज — 52
डा. उषा अरोड़ा

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।
दूरभाष : 384888

डा० (श्री) पुष्पा अग्रवाल

[illegible] आवश्यकताएं [illegible] करने [illegible] विकास की [illegible] प्राप्ति के लिए [illegible] [illegible] सर्वांगीण विकास [illegible] विकासशील [illegible] [illegible] हैं।

[illegible] पहली बार [illegible] पूरा विश्व [illegible] इसकी [illegible] वायुमंडल [illegible] 1987 [illegible] [illegible] पर्यावरण [illegible]

विकास की [illegible] जनसाधारण [illegible]

[illegible] सामाजिक [illegible] पद्धति जिसमें [illegible] की बढ़ती आवश्यकता है [illegible] प्राकृतिक स्रोतों के गहन शोषण [illegible] समस्याओं के प्रति [illegible] वैज्ञानिक ही नहीं बल्कि सामान्य जन में [illegible] समस्याओं का समाधान [illegible] विश्व का कोई देश [illegible] नाागरिक अछूता बच सकता [illegible]

[illegible] समस्याओं से हमारा [illegible] सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश [illegible] उत्पादन में वृद्धि के प्रयास [illegible] खेतों की सिंचाई [illegible] पानी की आवश्यकता ने, वहां की धरती को [illegible] उद्योगों ने उत्पादन तो दिया पर हवा और [illegible] भी किया। सड़कों से संचार सुविधाओं का [illegible] प्रवेश भी सुगम हो गया। [illegible] स्वास्थ्य सुधारा किन्तु साथ ही [illegible] रूप में वृद्धि की जिसके [illegible] उत्पादों की और अधिक मांग हुई। [illegible] गरीबी और आवश्यकता ही सबसे बड़े [illegible] इन समस्याओं का एक छोटा-सा [illegible] योजनाएं हैं जिन्हें सविचारित रूप से नहीं [illegible] योजनाओं के पर्यावरण पर पड़ने वाले [illegible] बचाव के लिए साधन नहीं जुटाए गए।

[illegible] कोई झील, नदी अथवा झरना [illegible] शुद्ध पानी लिया जा सके। [illegible] हमारे देश में 14 प्रमुख नदियां हैं। आज सभी [illegible] प्रदूषणग्रस्त हैं। पहाड़ों की हजामत [illegible] जाने से [illegible] पानी द्वारा विनाशलीला होती है [illegible] उपजाऊ मिट्टी बह जाती है। [illegible] धरती में पानी ऊपर चढ़ने के [illegible] आ गया है और ये भूभाग नोनिया [illegible] जा रहे हैं। इतना ही नहीं वनों

के कटने के कारण पानी को धरती के अन्दर रोके रखने का साधन लुप्त होता जा रहा है जिसके कारण पानी की प्राप्ति में असामनता आती जा रही है। लुप्त होते वनों के कारण वर्षा की अधिकता से एक ओर तो तत्काल बाढ़ आ जाती है और दूसरी ओर धरती में पानी के सामान्य स्तर मे भी कम पहुंच पाने से सूखा पड़ जाता है।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया को रोकना प्रगति में बाधक है और उसे प्रोत्साहन देना बढ़ते प्रदूषण के कारण तिलतिल कर मरण की ओर अग्रसर होना है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रदूषण का निस्तारण उचित अभिक्रिया द्वारा किया जाए। इसके लिए कुछ ऐसी विधियां अपनाई जानी आवश्यक हैं जिससे उत्सर्जक तत्वों का प्रयोग किसी उपयोगी रूप में हो क्योंकि यह प्रक्रिया बहुत व्ययशील है और उसके लिए अत्यधिक रसायनों और बिजली की आवश्यकता पड़ती है तुलना में कोई सीधा आर्थिक लाभ भी उद्योगपतियों को नहीं होता। अतः प्रदूषण नियंत्रण संयंत्र लगाने को उद्योगपति सबसे अन्तिम प्राथमिकता देते हैं। यदि प्रदूषण नियंत्रण को उत्पादकता में वृद्धि और आर्थिक लाभ के साथ जोड़ा जा सके एक सीमा तक इस समस्या का समाधान सम्भव हो सकता है। ऐसा दो एक क्षेत्रों में किया गया है और उसके अच्छे परिणाम भी निकले हैं। जैसे कागज और लुग्दी उद्योग में प्रदूषण नियंत्रण के साथ रेशा प्रति प्राप्ति, मद्य निर्माणशाला में मीथेन गैस की प्रति प्राप्ति, कास्टिक सोडा-क्लोरिन उद्योग में पारे की प्रति प्राप्ति का होना उत्साहवर्धक हैं।

हमारे देश में जनसंख्या में होती वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन में वृद्धि पर भी बल दिया गया है। परिणामतः अपशिष्ट संकलित होने लगे और प्रकृति का सन्तुलन डगमगाने लगा। यों तो प्रकृति में स्वयं शुद्धिकरण की क्षमता है परन्तु उसकी एक सीमा भी है और एक कड़ी भी। मानव की लालसा ने अनजाने ही अपने अज्ञान में उस कड़ी को विच्छिन्न कर दिया और कारखानों से, मोटर चालित वाहनों से, रेल से, घरेलू कार्यों से दूषित गैसों ने तथा खेती बाड़ी के नए साधनों, कीटनाशियों कीट ने पर्यावरण दूषित कर डाला। इतना ही नहीं अब तो शोर और नाभिकीय प्रदूषण भी अपना विकराल रूप दिखा रहे हैं।

जहां तक वाहनों का सम्बन्ध है चाहे वे कोयले से चलें या पेट्रोल से अथवा डीजल से वायु प्रदूषित होती ही है और शोर प्रदूषण भी फैलता है। पेट्रोल और डीजल के धुएं से सल्फर-डाई-आक्साइड, नाइट्रोजन और कार्बन-डाई-आक्साइड जैसी गैसें निकलती हैं। ये स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होती हैं। बस, स्कूटर, आटो-रिक्शा, कारों, टैम्पों आदि से जहां धुएं की मात्रा अधिक निकलती है वहां कुछ [illegible] कच्ची सड़कें भी प्रदूषण बढ़ाने में अहम भूमिका निभाती हैं। प्रदूषण नियंत्रण के विभिन्न आयामों में मुख्यतः भौतिक, रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियाओं का प्रचलन है। आर्थिक दृष्टिकोण से जैविक प्रक्रियाएं अधिक महत्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि भारत तथा अन्य विकासशील देशों में उत्सर्जित पानी के उपचार, निकास और प्रबन्ध में मुख्य रूप से जैविक प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। उत्सर्जित पानी मुख्य रूप से औद्योगिक क्षेत्रों और शहरीकरण से उत्पन्न होता है। घरेलू उत्सर्ग में मुख्य रूप से पानी में विलयशील ठोस पदार्थ, घुलनशील-कार्बनिक पदार्थ आदि होते हैं। कार्बनिक पदार्थों में प्रायः कार्बनडाइडेटस, प्रोटीन, वसा आदि होते हैं जो प्रायः सूक्ष्म जीवों से सरलता से विघटित हो जाते हैं किन्तु औद्योगिक उत्सर्ग का पानी उस प्रक्रिया में प्रयुक्त मूल पदार्थों पर निर्भर करता है। जीवाणु एवं कवक जो प्रायः मृतोपजीवी प्रकृति के होते हैं, अनेक किण्व पैदा करके यह कार्य करते हैं। प्रकृति में सूक्ष्म जीवों का एक विशाल जगत है। आज का विज्ञान यह स्वीकार करता है कि यदि ये सूक्ष्मजीव न होते तो यह जीवन तंत्र भी नहीं होता। वास्तव में ये सूक्ष्मजीव सर्वव्यापी हैं।

सूक्ष्मजीव प्रकृति की रचना एवं जीवन के प्रारंभ से ही उत्सर्गों के विघटन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। प्रकृति में जब उत्सर्ग तुलनात्मक दृष्टि से कम था ये सूक्ष्मजीव सामान्य रूप से सारे प्रदूषणों का निष्कासन करते रहे, किन्तु बढ़ते हुए उत्सर्ग के साथ जैविक उपचारात्मक प्रक्रियाओं का प्रयोग होने लगा। आक्सीकारी जैविक क्रियाओं के अतिरिक्त 'रोटेटिंग' बायोलाजिकल कान्टेक्टर, टिकलिंग फिल्टर जैसी अन्य उपचारात्मक प्रक्रियाओं का भी प्रयोग किया जा रहा है।

सूक्ष्मजीव भारी धातुओं को भी सरलता से संग्रह करते हैं। अतः विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक माध्यमों से सूक्ष्मजीवों में उत्परिवर्तन और इसकी प्रदूषण नियंत्रण में उपयोगिता आज बहुत ही सार्थक सिद्ध हुई है। जैसे पेपर मिल के उत्सर्ग से पानी में पाया जाने वाला 'लिग्निन' कुछ उत्परिवर्तित कवकों द्वारा सरलता से विघटित हो जाता है। कुछ उत्परिवर्तित जातियां प्रदूषण निवारण के साथ-साथ एक कोशीय प्रोटीन के रूप में उत्पन्न की जा रही है जो मुर्गी, मत्स्य, पशुपालन में पूरक पोषक के रूप में काम में ली जा रही है।

उपरोक्त के अतिरिक्त पर्यावरणीय खतरे को मिटाने के लिए अन्तरिक्ष का अन्वेक्षण भी किया जा रहा है पर यह भी नितान्त प्रदूषण रहित नहीं है। जहां अंतरिक्ष में आधुनिक उपकरण सुसज्जित करके समुद्र और सागर की गहराइयों का अध्ययन, वायुमण्डलीय घटनाओं और मौसम की जानकारी भी प्राप्त की

जा रही है वहीं अन्तरिक्ष में 400 किलोमीटर की ऊंचाई पर जुलाई 1962 में शक्तिशाली हाईड्रोजन बम के विस्फोट ने पृथ्वी के गिर्द गहन विकिरण की शक्तिशाली पर्त बनायी, जिसके विसरित होने में 10 वर्ष लग गए। इसका पर्यावरण पर बहुत ही घातक प्रभाव पड़ा।

जनसंख्या में वृद्धि

गरीबी और जनसंख्या में वृद्धि में पारस्परिक सम्बन्ध को अब अधिक अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है। भारत सरकार विश्व की उन कुछ एक सरकारों में से है जिन्होंने परिवार नियोजन कार्यक्रम को अपनाया। इस कार्यक्रम के आधार पर वर्ष 1986 तक जन्म दर 32.4 बच्चे प्रति हजार रह गई जबकि वर्ष 1961 में यह 40 बच्चे प्रति हजार थी। किन्तु जनसंख्या विकास को रोकने के लिए मात्र यह योजना पर्याप्त नहीं है क्योंकि वर्ष 1981 तक मृत्यु दर 12 व्यक्ति प्रति हजार गिर गई। यह अनुमान किया जाता है कि वर्ष 2000 तक जनसंख्या 972 मिलियन तक पहुंच जाएगी।

भूमि की गुणवत्ता में कमी

जन समुदाय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भूमि एक मूल स्रोत है। हमारे राष्ट्र की 75 मिलियन हैक्टेयर वन भूमि में से 30 मिलियन हैक्टेयर वन भूमि बंजर या ऊसर है। भूक्षरण, धरती के नमकीन पन और अम्लीयता के कारण बंजरपन बढ़ता जा रहा है। यह बढ़ता बंजरपन भी भारत की एक पर्यावरण सम्बन्धी समस्या है। इसके अतिरिक्त बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन के लिए वर्ष 2000 तक कृषि भूमि में भी वृद्धि आवश्यक होगी। फिर चरागाहे हैं। पशुधन का भारतीय जीवन में विशेषतः निर्धन वर्ग के लिए विशेष महत्व है। इनका गोबर ईंधन और खाद के काम आता है तथा इनके उत्पाद मानव शरीर की पोषकता के लिए प्रयुक्त होते हैं। इतना ही नहीं इनकी त्वचा अनेकों ग्रामीण उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति करती है। पशुधन राष्ट्रीय आय में लगभग 6% का योगदान देता है। जानवरों के इस विशाल झुण्ड के लिए चारे की आवश्यकता है। देश की धरती में से लगभग 13 लाख मिलियन हैक्टेयर धरती पर चरागाहे हैं। किन्तु निर्धन जन इसमें से काफी बड़े भाग पर खेती कर लेते हैं और पशु अपनी उदर पूर्ति के लिए जो कुछ आसपास मिलता है उसमें मुंह मारने को विवश होते हैं। यह भारत की अपनी एक स्थिति है कि जानवरों को वनों में भी चराया जाता है। हजारों वर्ष पुरानी परम्परा के कारण जानवरों को वन में चराना एक वैधानिक अधिकार समझा जाने लगा है, जो वन विकास में बहुत अधिक बाधक है।

वन भूमि

भारत में लगभग 75 मिलियन हैक्टेयर वन भूमि है जिसमें से 22 हैक्टेयर भूमि पर विभिन्न प्रजातियां उत्पन्न होती हैं। आदिवासियों सहित लगभग 100 मि. गरीब व्यक्तियों की आजीविका का ये प्रजातियां एकमात्र अवलम्ब हैं। वे भोजन, कृषि औजारों, औषधियों के लिए ही नहीं वरन् मकान बनाने की सामग्री के लिए भी इन पर निर्भर करते हैं तथा गौण वन-उत्पादों को संकलित करके बेचते भी हैं। किन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या, आवश्यकताएं और उद्योगों की कच्चे माल की मांग ने इन वनों पर अत्यधिक दबाव डाला है। कागज, लुग्दी उद्योग, फलों की पैकिंग और भवन निर्माण जैसे उद्योग का वनों पर दबाव बढ़ता ही जा रहा है। वर्ष 1972 से 1982 के दौरान वन में उत्पादित वृक्षों में 19% कमी हुई। अब घने जंगल केवल 11% रह गये हैं। घने जंगलों में आई कमी के कारण देश में पानी की आपूर्ति भी प्रभावित हुई है।

राष्ट्रीय वन नीति

भारत में वर्ष 1952 में राष्ट्रीय वन नीति का प्रतिपादन किया गया था। इसका उद्देश्य देश की कुल भूमि के एक तिहाई भाग पर वन लगाना था किन्तु वर्ष 1980 तक इसके क्रियान्वयन पर विशेष बल नहीं दिया गया। इस बीच वनों की जो क्षति हुई उससे परिस्थितिकीय स्थिरता के लिए खतरा पैदा हो गया है। अतः वनों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय वन नीति में कुछ संशोधन किए गए—इन संशोधित नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- परिस्थिति की सन्तुलन के परिरक्षण द्वारा पर्यावरणीय स्थिरता बनाए रखना।
- शेष बचे प्राकृतिक वनों का परिरक्षण और प्रचुर आनुवंशिक संसाधनों की सुरक्षा द्वारा प्राकृतिक विरासत का संरक्षण करना।
- लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं विशेषतया ग्रामीण और आदिवासी लोगों के ईंधन की लकड़ी, चारे और छोटी इमारती लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
- वनों में और उनके आसपास रहने वाले आदिवासी और अन्य गरीब लोगों के बीच वनों पर उनके परम्परागत अधिकारों और रियायतों की रक्षा करके पारस्परिक सम्बन्ध बनाए रखना।

संशोधित वन नीति में मुख्य रूप से निम्नलिखित उपायों का उल्लेख है:

- वर्तमान वन भूमि और वनों की पूरी तरह सुरक्षा की जाएगी और उनकी उत्पादकता में सुधार किया जाएगा।

पहाड़ी ढलानों और नदियों के जल ग्रहण क्षेत्रों में वनों में वृद्धि करने पर जोर दिया जाएगा।

– जीव वैज्ञानिक विविधता का संरक्षण के लिए राष्ट्रीय उद्यानों, जीवमण्डल और अन्य सुरक्षित क्षेत्रों के नेटवर्क का विस्तार और उनका बेहतर प्रबन्ध किया जाएगा।

संशोधित वन नीति के कार्यान्वयन के लिए वन संरक्षण अधिनियम 1980 बनाया गया जिससे गैर वन प्रयोजनों के लिए वन भूमि का अन्धा-धुन्ध उपयोग करने को रोका जा सके। इस अधिनियम के तहत किसी आरक्षित वन को अनारक्षित घोषित करने या गैर वन प्रयोजन के लिए वन भूमि को उपयोग में लाने से पहले केन्द्र सरकार की पूर्वानुमति लेनी अपरिहार्य है। कोई भी राज्य सरकार या प्राधिकरण केन्द्र सरकार की पूर्वानुमति के बिना किसी वन भूमि या उसके किसी भाग को पट्टे पर या किसी अन्य तरीके से किसी व्यक्ति, निगम, अभिकरण, संगठन को सौंपे जाने के आदेश जारी नहीं कर सकती। किसी वन भूमि या उसके किसी भाग में पुनः वृक्षारोपण के लिए वहां नैसर्गिक रूप से उगे वृक्षों की पूर्ण रूप से कटाई भी केन्द्र सरकार की पूर्वानुमति लिए बिना नहीं की जा सकती है।

गैर वन उद्देश्य की परिभाषा के विषय क्षेत्र का विस्तार करके उसमें चाय, काफी, मसाले, रबड़, तिलहन के पौधे, बागवानी फसलों, औषधीय पौधों की खेती को सम्मिलित कर दिया गया है। पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1986 को 19 नवम्बर 1986 से लागू किया गया है। इस अधिनियम के उपबन्धों के अन्तर्गत नियमों सहित बहिस्रावों और उत्सर्जनों के लिए मानकों को अधिसूचित करना, पर्यावरणीय प्रयोगशाला, सरकारी विश्लेषकों को मान्यता देना, बन्द आदि के निर्देश जारी करने के लिए केन्द्रीय सरकार के पास निहित शक्तियों को राज्य सरकारों और अन्य अभिकरणों को प्रत्यायोजित करना सम्मिलित है।

वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 तथा जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 में भी संशोधन करके उनके उपबन्धों को अधिक कड़ा बना दिया गया है।

पर्यावरण संरक्षण की भारतीय परम्परा वैदिक काल से प्रारंभ होकर इतिहास के साथ-साथ चलती आई है। वेदों में धर्म का सम्बन्ध मानव जीवन के सभी पहलुओं से जोड़ा गया है। उस युग के देवताओं में प्रकृति के ही विभिन्न रूप हैं जो यहां के पूज्य रहे हैं। सूर्य, सविता, ऊषा, भास्कर, वरुण आदि की तृप्ति के लिए किये जाने वाले यज्ञों में दी जाने वाली आहुतियों का एक प्रयोजन वायु का शुद्धिकरण भी था। प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रतिदिन हवन करना उसके धर्म का अंग था—क्योंकि यह माना गया था कि वह श्वांस लेकर वायु को दूषित करता है।

भारत के वृक्ष, यहां की नदियां भी पूज्य मानी गई हैं। पाषाण खण्डों और लोह स्तम्भों पर उत्तीर्ण चित्र इस बात का स्मरण कराते हैं कि आज से 22 शताब्दी पूर्व सम्राट अशोक ने पशुधन और वन के वृक्षों की रक्षा करना राजा के कर्तव्यों में से एक माना था। सम्भवतः वह पहला सम्राट था जिसने अनेकानेक प्रजातियों की हत्या का निषेध किया था चाहे वह शिकार से सम्बद्ध हो या फिर आहार से।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में मानव सभ्यता जिस तेजी के साथ जीने के नए-नए साधनों, प्रसाधनों की खोज करती जा रही है और उन पर गर्वित हो रही है उसी तेजी के साथ उसका प्राकृतिक परिवेश भी दूषित होता जा रहा है। परिणामतया उसके प्राणों का संकट गहराता जा रहा है। वह समय दूर नहीं है जब मानव पानी की बोतल लटकाए, आक्सीजन का सिलैन्डर लादे और मुखौटा लगाए बैठने के लिए निरापद स्थान की खोज में होगा। हमारे वैज्ञानिक विभिन्न आविष्कारों, कल कारखाने, दैनिक जीवन में काम आने वाले अधिकांश उपकरण एक ओर जीवन को जितना सुख पहुंचा रहे हैं दूसरी ओर उनके ही कारण दिन प्रतिदिन अपने पर्यावरण को दूषित भी कर रहे हैं।

प्रदूषण की समस्या विज्ञान की देन है। यह उद्योगों की समृद्धि का बोनस है और मानव को मृत्यु के मुंह में धकेलने की अनचाही चेष्टा है। वास्तव में यह प्राणीमात्र में अमंगल की अप्रत्यक्ष कामना है। यदि पर्यावरण प्रदूषण के अभी समाप्त करने के प्रयास नहीं किए गए तो समय ऐसा आएगा जब हमारा यह ग्रह जब हर जगह तेजाबी बरसात, बढ़ती हुई गर्मी और ओजोन की टूटती परत के कारण झुलस चुका होगा तब दूर-दूर तक फैले रेगिस्तान और विलुप्त हुई प्रजातियों के कारण प्रकृति अपने ताने-बाने के विच्छिन्न हो जाने से ताण्डव करेगी। तब तक ज्ञान विज्ञान के ये नीति निर्धारक धरती से उठ चुके होंगे। इस ध्वंस की साक्षी होगी युवा पीढ़ी और इसका फल भोगेगी भावी पीढ़ियां। अतः मानव के हित में इसके प्रति पूर्णतया जागरूकता और इसका उपचार अनिवार्य आवश्यकता है।

72, एस. एफ. एस. फ्लैट्स,
गौतम नगर, नई दिल्ली-16

वृक्षारोपण और पर्यावरण

प्रो. जी. सुंदर रेड्डी

हरा रंग आशा और विश्वास का प्रतीक है और यह इसीलिए कि हरियाली ही जीवन का चिह्न है। हरा पौधा विश्व की आस है और इसमें लेश मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं कि यदि हरा पौधा न हो तो पृथ्वी पर जीवन बिल्कुल असंभव हो जाए। लेकिन जिस परंपरागत पृथ्वी को हम पल्लवों के मर्मर में लज्जारुण और फूलों के रंग रंजन में यौवन गर्वित देखते आये हैं—वही पृथ्वी आज हमें रीती दिखाई दे रही है, मानो शिशिर में खड़ी उसासें भर रही हो। हरित, भरित, पल्लवित, मर्मरित, कुसुमित भूमि, जो पेड़ों से भरकर हमें सम्मोहित करती थी वही भूमि आज शुष्क और निर्जीव लग रही है। आखिर क्यों? क्या प्रकृति मानव को रचकर स्वयं हार गयी है? क्या सचमुच मानव, प्रकृति का प्रथम शत्रु बन गया है? जिस प्रकृति की तश्तरी में खाकर वह जी रहा है, जिस मधु को पीकर वह पार हो रहा है, जीवन में संघर्षों से जलता हुआ, विद्युत तथा अणुशक्ति की प्रबल तरंगों पर, प्रकाश वेग से आगे बढ़ता हुआ थका मांदा मानव, जिन सघनों की छाया में एक क्षण के लिए सुस्ताने के लिए बैठना चाहता है क्या उन्हीं वनों का नाश करने समायत्त हो रहा है? क्या यंत्र युग ने मानव को इतना स्वार्थी और लोभी बना दिया या यह सब परिस्थितियों की विवशता के कारण है?

आइए, अब हम विचार करें कि मानव वृक्ष तथा पर्यावरण के बीच कैसा घनिष्ट संबंध है। हम लोगों में से विरले ही ऐसे हैं जो पेड़ तथा वृक्षों की संगति में चंद क्षण बिताना न चाहते हों। उनकी हरियाली, कोंपलों की कोमलता, नस्कीले फलों की स्निग्धता [illegible] हमारी मनःस्थिति को प्रतिफलित करने वाली उनकी विभिन्न दशाएं, हमें अपने घरों में बागवानी करने को बाध्य करते हैं। खुली जगह न होने पर भी बड़े-बड़े शहरों की ऊंची अट्टालिकाओं में, खिड़कियों पर रखे हुए गमलों में ताकने वाले पौधे—घर के आगे या पिछवाड़ों में दर्शन देने वाले उपवन व बाग-बगीचे—वातावरण को सुंदर व आकर्षक बनाने के लिए ही नहीं, पर्यावरण में फैले प्रदूषण को दूर करने में भी काम आते हैं।

दिन प्रति दिन वैयक्तिक जीवन के हर काम काज को समर्थ रूप से निभाने के लिए मनुष्य को जो शक्ति प्राप्त हो रही है, वह सिर्फ प्रकृति के कारण ही है। चाहे मनोरंजनात्मक खेल कूद हों या मस्तिष्क को तेज बनाने वाले अनुसंधान कार्य, इनके पीछे जो महान शक्ति छिपी रहती है वह प्रकृति प्रदत्त है। यहां ध्यान देने की बात यह है कि लौकिक ही नहीं पारलौकिक सुख प्रदत्त करने का भी श्रेय वृक्षों को है। श्री बालकृष्ण का पीपल के पत्तों पर सोना, सिद्धार्थ का बोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त कर बुद्ध बनना, [illegible] पेड़-पौधों की पूजा [illegible] भारतीयों के सांस्कृतिक एवं पारलौकिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। इसीलिए सम्राट अशोक से लेकर वर्तमान [illegible] तक विकासशील कार्यक्रम में वृक्षारोपण पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है ताकि गरीब और जनजातियों का वनों और उनके उत्पादों पर जो जन्मजात अधिकार है वह उन्हें [illegible] के लोग हैं, इन [illegible] कार्यक्रमों द्वारा [illegible] हो सकें और प्रगति पथ पर [illegible]

स्टाकहोम लोक सम्मेलन की प्रेरणा को ग्रहण कर भारत में पर्यावरण आंदोलन का शुभ आरंभ सन् 1972 में हुआ था। तब से लेकर यहां पर पर्यावरण-संरक्षण की आवश्यकता पर लोग सोचने-विचारने लगे हैं। औद्योगिक प्रदूषण पर नियंत्रण और दिन प्रति-दिन नष्ट होने वाली वृक्ष एवं जंतु-प्राणियों के परिरक्षण की दिशा में विकसित राष्ट्रों के अनुभव को आधार बनाकर भारत में गंभीर चिंतन मनन चल रहा है। फिर सन् 1980 में 'तिवारी-आयोग' उसके बाद सन् 1981-83 में 'राष्ट्रीय पर्यावरण आयोग' गठित हुए। इन दोनों आयोगों ने भारत के लिए ही नहीं, विकासशील देशों के लिए भी आवश्यक दो प्रधान-मुद्दों पर प्रकाश डाला। 1) जीवन-यापन के लिए मूलाधार भूमि, जल, जीव, वनस्पति आदि संसाधनों को आगे नष्ट-भ्रष्ट न होने देना और 2) मानव-आवास के लिए स्वच्छ जल, सफाई आदि न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। यह खुशी की बात है कि दिन-प्रति-दिन पर्यावरण के संतुलन की दिशा में लोग सचेत हो

रहे हैं। यह चेतनशील चिंतन राष्ट्र के दूरगामी आवश्यकताओं तथा समस्याओं के समाधान और जीव मात्र के अस्तित्व के लिए हितकर है।

बढ़ती हुई आबादी के कारण मानव प्राकृतिक-संपत्ति का अंधा-धुंध दुरुपयोग करने लगा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि कुल भूभाग में एक तिहाई भाग में वनों का पोषण करना चाहिए। आज हमारे देश में जो वन हैं वे हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। ईंधन की पूर्ति और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए वनों की वृद्धि करने के सिवा और कोई चारा नहीं है। इसीलिए भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने 20 सूत्री कार्यक्रम में सामाजिक वनों तथा वृक्षारोपण और बायो-गैस एवं गोबर गैस आदि वैकल्पिक ईंधनों का प्रचार तथा प्रोत्साहन को प्रमुख स्थान दिया था।

हमारे देश के भूभाग में केवल 22.8 प्रतिशत वन फैले हुए हैं। राष्ट्रीय-वन-योजना आयोग के अनुसार 33 प्रतिशत भूभाग में वन होने चाहिए। बढ़ती हुई आबादी के साथ खेतीबारी का विस्तार, सिंचाई एवं बिजली की परियोजनाएं, विशाल औद्योगिक क्षेत्र, आवास के लिए गृह निर्माण आदि अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हम सन् 1950-80 के मध्यकाल में ही 43.28 लाख हैक्टेयर वन-भूमि को खो बैठे हैं। इसीलिए केंद्र सरकार ने राज्यों को यह आदेश दिया है कि वन-क्षेत्रों को अन्य आवश्यकताओं के लिए नष्ट नहीं करना चाहिए, यदि नष्ट करना अनिवार्य हो गया हो तो उसके समान क्षेत्र में वनों की वृद्धि करनी चाहिए।

सन् 1982 में भारत सरकार की वन-नीति के अनुसार वनों को तीन प्रकार--1) सुरक्षित-वन2), राष्ट्रीय वन और 3) ग्रामीण-वन में विभाजित किया गया है। इसी योजना के अनुसार सरकार ने तीन प्रकार के सामाजिक-वृक्षारोपण कार्यक्रम निर्धारित किये हैं, जैसे कि व्यर्थ पंचायत भूमि में वृक्षारोपण, पेड़-पौधे जिन वनों में नष्ट किए गए हैं उन वनों में पौधे लगाना और गांववालों की आवश्यकताओं की पूर्ति जैसे कि चूल्हे जलाने की लकड़ी, पशुग्रास, कृषि औजार तैयार करने के लिए वैकल्पिक पेड़-पौधों की वृद्धि। यदि सरकार की उल्लिखित योजनाएं कार्यान्वित हो सकेंगी तो ये योजनाएं हमारे लिए और हमारी अगली पीढ़ियों के लिए अवश्य लाभदायक सिद्ध होंगी। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए बड़े पैमाने पर जन-संचार माध्यमों का उपयोग करना चाहिए। इतना ही नहीं हमारी प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली में वृक्षारोपण तथा पर्यावरण-परिरक्षण की आवश्यकताओं तथा उपलब्धियों को जोड़ देना चाहिए और हमारे बच्चों को प्रकृति-जन्य संपदाओं का सदुपयोग, सहजीवन और सह-अस्तित्व की सीख देने की भी आवश्यकता है।

जब से मनुष्य समूहजीवी बना तब से वृक्ष और वन उसकी संपत्ति को बढ़ाने में तथा उसके स्वस्थ और श्रेय को बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुए और हो रहे हैं। वन-शिक्षा पर आधारित उद्योगों में सिर्फ अमेरिका में ही एक मिलियन से ज्यादा कर्मचारी काम कर रहे हैं। वहां के रोजगार में 12 प्रतिशत से ज्यादा लोग वन के उत्पादन पर ही आधारित हैं। हमारे देश में जब तक वैज्ञानिक उपकरणों से काम नहीं लिया जाता था तब तक 77 प्रतिशत लकड़ी कटाई में ही नष्ट हो जाती थी। लेकिन परिष्कृत मशीनों के उपयोग और लकड़ी की कटाई में सतर्कता बरतने से इस बरबादी को रोका जा रहा है। पेड़ों को काटना, लकड़ी को सावधानी से उपयोग में लाना, वन-शिक्षा प्राप्त कारीगरों, आधुनिक मशीनों के उपयोग में लाने का तात्पर्य यह नहीं कि वृक्षों को नष्ट करें। जैसे फ्लोरेन्स जे. हैलेण्डर ने अपनी किताब 'वृक्षों की दुनिया' में कहा-- ''वास्तव में वृक्ष मानव की अपार संपत्ति है फिर भी दुर्भाग्य की बात है कि इसके विपरीत मानव ही वृक्षों का अक्सर शत्रु बन जाता है।'' कितनी परस्पर विरोधी हैं ये बातें?

मानव यदि जिंदा है तो वृक्षों के ही कारण, क्योंकि इस भूमि पर सामूहिक जीवन के अगुआ बनकर वृक्षों ने ही पहले पदार्पण किया। उनकी छांह में पक्षियों ने घोंसले बनाये, पशुओं ने सामूहिक जीवन आरंभ किया। क्योंकि जीवन की प्रमुख आवश्यकता--खान-पान और आवास की समस्या के समाधान के रूप में वृक्ष उनके सामने उपस्थित थे। गुफाओं में रहने वाले अपने पूर्वजों से आगे बढ़ते हुए सभ्य मानव, आधुनिक काल में इस संत्रस्त काल पर आकर खड़ा हुआ है, जहां वह शांत प्रकृति को भी त्रस्त कर रहा है। जैसे पशु-पक्षी अपने अन्न के लिए पेड़-पौधों पर और वृक्षों पर आधारित हैं वैसे मानव भी, चाहे फल हों या बीज--चाहे तरकारी हो या साग-भाजी--सब के लिए हमें कृषि पर आधारित रहना पड़ता है।

उल्लिखित बातों को ध्यान में रखते हुए विगत दशकों में भारत में पर्यावरण-आंदोलन को वैधानिक मान्यता भी मिली और जल एवं वायु प्रदूषण, भूमि-क्षरण की रोकथाम के लिए नये कानून अमल में लाये गये हैं। इस नये आंदोलन को उल्लेखनीय सफलताएं भी प्राप्त हुई हैं। 'प्रोजेक्ट टाइगर' जिसे सन् 1973 में आरंभ किया था, के द्वारा एक क्षीणग्रस्त जाति (बाघ) का उद्धार ही नहीं, राष्ट्रीय-वनों का विकास भी हुआ है। सिंचाई एवं बिजली परियोजना के कारण नष्ट हो जाने वाली 'सैलेंट वैली' का संरक्षण, मथुरा-रिफाइनरी से प्रदूषित

प्रकृति का संतुलन
इसे बिगड़ने न दीजिए

ताजमहल भवन का संरक्षण आदि पर्यावरण आंदोलन की सफलताएं महत्वपूर्ण मानी जा सकती हैं।

उपर्युक्त विषयों के अलावा हम हर क्षण जो आक्सीजन ले रहे हैं क्या उसे हमें वृक्ष नहीं दे रहे हैं? असंख्य सूर्य रश्मियां जो भू को छू रही हैं—उनका संपूर्ण उपयोग सौर्यशक्ति के रूप में मेधा-संपन्न मानव न कर पा रहा है—लेकिन उन्हीं सूर्य रश्मियों को वृक्षों के पत्ते क्लोरोफिल में बदलकर कार्बन डाइ आक्साईड जो मानव के लिए हानिकारक है, उसे ग्रहण कर रहे हैं और संजीवनी के समान आक्सीजन को हमारे लिए छोड़ रहे हैं। जहां वृक्ष अधिक होते हैं—वहां अधिक वर्षा होती है—मेघों को आकर्षित कर बरसाने की शक्ति पत्तों की ठंडी हवा में होती है—जब यह पानी वृक्षहीन जगहों पर बरसता है—अधिक मात्रा में उसके नष्ट होने की संभावना रहती है। इस प्रकार भूमि की कटाई तथा रेगिस्तान बनने से भी पेड़-पौधे बचाते हैं।

इसीलिए प्रकृति के कवि सुमित्रानंदन पंतजी ने हंसते हुए भूमि के अंगों—नयनोल्लासित वृक्षों से भरपूर पृथ्वी का सजीव वर्णन इन पंक्तियों में किया—

> "हंसने भू के अंग-अंग हरित-हरित रंग
> दूर्वा पुलकित भूतल नवोल्लासित तृण तरु दल
> श्यामल, कोमल, शीतल लोचन प्रिय, प्राणोज्वल
> तन पोषक-मन मंगल सजल सिंधु शोभित रंग
> जीवन का जीवित रंग।"

दार्शनिक दृष्टि से गीतकार की 'वासांसि जीर्णानि विहाय' वाली बात ठीक हो, और पत्तों की मांसल हरियाली जब नष्ट हो जाती है उनकी सूक्ष्म स्नायुओं से बनी हुई हथेली का कला-विन्यास, चाहे देखने वालों को आश्चर्य चकित कर दे, लेकिन वृक्षों की उस प्रकार की स्थिति सचमुच दुर्भाग्य की बात है। जब तक मानव, राह में मौन खड़े इन वृक्षों की मूक वेदना सुनने और समझने में समर्थ नहीं हो पाता तब तक पर्यावरण प्रदूषण से उसे कोई बचा नहीं सकता। हम सब मिलकर ऐसी कामना करें कि हर मानव संवेदनशील हो—प्रज्ञा के साथ-साथ करुणा की मात्रा भी उसमें बढ़ती जाये और वृक्षों की रक्षा के साथ-साथ अपनी भी रक्षा कर सके।

विद्यानगर,
विशाखापत्तणम-530003

ग्रामीण विकास में वृक्षारोपण का योगदान : एक अध्ययन

कैलाश चन्द्र

मनुष्य आदिकाल से ही अपने भोजन, कृषि तथा मकान के लिए वृक्षों पर आश्रित रहा है। आज भी ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी, जड़ी-बूटी, फल-फूल तथा कई उद्योगों जैसे कागज, दियासलाई आदि के लिए कच्चे माल हेतु हम वृक्षों पर आश्रित हैं। वृक्ष वर्षा करने में सहायक होते हैं, पानी के बहाव एवं मिट्टी के कटाव को कम करते हैं, तथा रोजगार के साधन जुटाते हैं। वृक्षों के इन्हीं गुणों के कारण पुराने समय से हमारे देश में वृक्षों की पूजा होती आयी है।

आज हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में निजी वन तथा बागों के पेड़ों का बड़ी मात्रा में कटान जारी रहने के कारण आम जनता को लकड़ी का मिलना कठिन हो गया है। लकड़ी उपलब्ध न हो पाने के कारण लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों में आज भी गोबर के उपले जलाए जाते हैं। यहां तक कि कुल गोबर का दो तिहाई भाग उपलों के रूप में प्रति वर्ष जला दिया जाता है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन के लिए लकड़ी का प्रबन्ध कर दिया जाये तब गोबर को बचा कर खाद के रूप में खेतों में डाला जा सकता है जिससे खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी, फलस्वरूप अधिक अन्न उत्पादन करने में सहायता मिलेगी, साथ ही साथ कृषकों को कृषि क्षेत्रों में रोजगार भी मिलता रहेगा। अधिकाधिक अन्न उत्पादन से ग्रामीण कृषकों की आय में वृद्धि होगी, जिससे उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में, प्रस्तुत लेख में उत्तर प्रदेश के ग्रामीण विकास में वृक्षारोपण के योगदान का विवेचन किया गया है। दुर्भाग्य से उत्तर प्रदेश में जो भी वन हैं वह हिमालय एवं विन्ध्याचल के पहाड़ियों तथा तराई क्षेत्र तक सीमित हैं। उत्तर प्रदेश के मैदानी जिले जहां लगभग आठ करोड़ लोग रहते हैं वनों से वंचित हैं। ऐसी स्थिति में ईंधन, चारा, कृषि कार्य तथा मकान बनाने के लिए लकड़ी जुटा पाना दिन प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। यदि वृक्षारोपण के द्वारा इस स्थिति को रोका न गया तो आज जो लोग गांवों में दूसरों के बाग-बगीचों से लकड़ी का प्रयोग कर रहे हैं वे सारे स्रोत भविष्य में बन्द हो जाएंगे और उन्हें भोजन के साथ-साथ लकड़ी के लिए भी दूर-दूर तक भटकना पड़ेगा। अतः उपरोक्त कठिनाइयों का हल निकालने हेतु प्रदेश के मैदानी जिलों में सामाजिक वानिकी योजना के अंतर्गत बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण कार्य प्रारंभ किया गया है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी, फल-फूल, उपलब्ध कराने के साथ-साथ बेरोजगारों को काम के अवसर भी उपलब्ध हो सकेंगे।

यदि इस योजना को जीवनाधार का एक अंग मानकर ग्रामीणों द्वारा वृक्षारोपण किया जाये तो वे काफी हद तक अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं साथ ही साथ गांवों को एक आदर्श गांव के रूप में बना सकते हैं।

वृक्षारोपण के प्रति प्रदेश की ग्रामीण जनता का अटूट लगाव व प्रयास है परन्तु उनके सामने कुछ मूलभूत समस्या होने के कारण वृक्षारोपण से जितनी सम्भावनायें की जा सकती हैं उसका प्रतिफल प्राप्त नहीं हो रहा है जिसके कारण ग्रामीण लोग जिनके पास निजी बाग-बगीचे नहीं हैं आज भी ईंधन, चारा, लकड़ी तथा खाये जाने वाले फल-फूलों के लिए इधर-उधर भटकना पड़ रहा है। यदि सरकार ग्रामीण जनों की सहायता से ग्रामीणों की इन समस्याओं का निवारण कर दे तो ग्रामीण लोग भी वृक्षारोपण करना अधिक पसन्द करेंगे और सरकार द्वारा चलायी जाने वाली सामाजिक वानिकी योजना में तेजी आयेगी।

वृक्षारोपण योजना को ग्रामीणों द्वारा निजी रूप से न अपनाने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि व्यक्तियों द्वारा लगाये जाने वाले कुल पौधों की लगभग 65 प्रतिशत पौध किसी न किसी कारणवश अवश्य नष्ट हो जाती है। पच्चास प्रतिशत पौध उसी सत्र में नष्ट हो जाते हैं जिस सत्र में उसे लगाया जाता है तथा शेष 15% दूसरे वर्षों में नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार यदि देखा जाये तो कुल नष्ट हुए पौधों का 45 प्रतिशत व्यक्तियों व जानवरों द्वारा नष्ट हो जाते हैं शेष पौध पानी, तकनीकी ज्ञान का अभाव, कीटाणुओं आदि के कारण नष्ट होते हैं। ग्रामीण लोगों में तकनीकी ज्ञान कम होने के कारण जिनके पास पेड़ लगाने योग्य जमीन खाली पड़ी है उस जमीन का उचित लाभ उठाने में असमर्थ हैं।

सरकार सहकारी समितियों के माध्यम से पेड़ों को लगाने का प्रयास कर रही है परन्तु ग्रामीणों द्वारा सहकारी समिति के माध्यम से बहुत ही कम वृक्षारोपण किया जा रहा है। इसका प्रमुख कारण सहकारी समिति के बारे में जानकारी का न होना

ही है। क्योंकि बहुत से लोग ऐसे हैं जिनको यही नहीं मालूम है कि सहकारी समिति किसे कहते हैं? तथा इसके द्वारा पेड़ों को लगाने से उन्हें क्या लाभ मिलेगा? यदि अल्प लोग जो इसके माध्यम से वृक्षारोपण करना चाहते हैं या कर रहे हैं वे या तो अपने परिवार के सदस्यों के साथ या फिर अपनी ही जाति के लोगों की एक समिति बनाकर लगाना चाहते हैं क्योंकि उन्हें बाहरी व्यक्तियों के साथ समिति बनाकर वृक्षारोपण करने से आपसी झगड़ा तथा मतभेद होने का भय रहता है।

उत्तर प्रदेश सरकार वृक्षारोपण अभियान को युद्ध स्तर पर चलाने के लिए प्रयत्नशील है। सरकार ने उत्तर प्रदेश में वृक्षारोपण पट्टे द्वारा हरियाली कार्यक्रम नाम से एक नयी योजना प्रारम्भ की है। इस योजना में गांवों के निर्धन व भूमिहीन व्यक्तियों व महिलाओं को ग्राम समाज अथवा पंचायत की भूमि वृक्षारोपण हेतु पट्टे पर दी जाती है। पेड़ लगाये जाने वाली भूमि पर पट्टेदार का कोई हक नहीं होता है परन्तु इसके द्वारा लगाये जाने वाले पेड़ों के समस्त लाभ पर उसका पूरा अधिकार होता है और जरूरत पड़ने पर पेड़ों को बन्धक रखकर बैंकों से ऋण भी प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार यदि देखा जाये तो वृक्षारोपण को प्रगतिशील बनाये रखने के लिए राज्य सरकार प्रगतिशील है। वृक्षारोपण योजना को अधिकाधिक प्रगतिशील बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार दिये जा सकते हैं—

सरकार द्वारा पेड़ों की सुरक्षा के लिए तार, दवाइयां आदि की थोड़ी बहुत सहायता दी जाये तथा जिन व्यक्तियों के जानवरों द्वारा पेड़ों को क्षति पहुंचती है उनकी जांच करके उचित दण्ड का भागी बनाया जाये।

जिन इलाकों में पानी की असुविधा है वहां पर नये नलकूपों की व्यवस्था की जाये तथा पुराने नलकूप जो खराब होने के कारण बंद पड़े हैं उनकी मरम्मत करायी जाए।

ग्रामीण इलाकों में जहां पर नजदीकी नर्सरी नहीं है वहां पर नर्सरी खुलवाई जाये तथा नर्सरी में पौधे अच्छे किस्म, स्वस्थ तथा समय से उपलब्ध कराये जायें। नर्सरी दूर होने के कारण ही ग्रामीण जनता अधिक वृक्षारोपण नहीं कर पा रही क्योंकि उन्हें पौधों के मूल्य की अपेक्षा वाहन खर्च ज्यादा वहन करना पड़ता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में वन विभाग द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की नियुक्ति की जाए जो गांवों में जा कर पेड़ों से सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी प्राप्त करें तथा पेड़ों के बारे में तकनीकी जानकारियां लोगों को हासिल करायें।

वन विभाग द्वारा जो पौध निःशुल्क दी जाती है वह ऐसे व्यक्तियों को वितरित की जाये जो उनकी उचित प्रकार से देखभाल कर सकें तथा जिन व्यक्तियों की आधे से अधिक पौध नष्ट हो जाती हैं उन्हें दूसरे सत्र में निःशुल्क पौध न दी जाये क्योंकि निःशुल्क प्राप्त पौधों की लोगों द्वारा बहुत कम देखभाल की जाती है।

इस प्रकार वृक्षारोपण जैसे व्यापक कार्यक्रम को सुचारू रूप से बहुमुखी तभी बनाया जा सकता है जब इस महान कार्य के लिए सरकार तथा ग्रामीण निवासियों द्वारा मिल-जुल कर कार्य किया जाये। आज आवश्यकता इस बात की है कि वृक्षारोपण जैसे महान कार्य को एक जन आन्दोलन के रूप में शुरू किया जाये। वृक्षारोपण को यदि विकास की एक कड़ी मान लिया जाये तब ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की बहुत-सी समस्याएं पर्यावरण के अतिरिक्त हल हो जायेंगी, ग्रामीण निवासियों को ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार मिलता रहेगा, गांवों से शहरों में आने की भावना में बदलाव आयेगा। परिणामतः ग्रामीणवासियों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

प्रदेश की सरकार यदि सामाजिक वानिकी योजना द्वारा विकास की गति तेज करना चाहती है तब सर्वप्रथम ग्रामीणों की इन समस्याओं तथा सुझावों को प्राथमिकता देनी होगी तथा ग्रामीण जनता में वृक्षारोपण के प्रति नवचेतना जागृत होगी क्योंकि ग्रामीण जनता में वृक्षारोपण के प्रति अटूट लगाव है। इस प्रकार वृक्षारोपण अधिक होने से ग्रामीण विकास होने के साथ-साथ महात्मा गांधी जी का 'आदर्श ग्राम का सपना' भी पूरा होकर सम्पूर्ण धरती हरी-भरी हो जाएगी तब यह नारा भी साकार हो जाएगा—

"देश की धरती करे पुकार
बच्चे दो हों, पेड़ हजार।
ग्राम विकास के खुलेंगे द्वार
जब हम ग्रामीण करेंगे पेड़ तैयार।।"

गिरी विकास अध्ययन संस्थान
सेक्टर 'ओ', अलीगंज विकास प्राधिकरण
लखनऊ-226020

सामाजिक वानिकी की आवश्यकता क्यों?

सुनीता टंडन

वनों से हमारा बड़ा गहरा सम्बन्ध है। वन हमारे वर्तमान और भविष्य के संरक्षक हैं। यदि वनों का अस्तित्व नहीं रहेगा तो हमारा भी नहीं। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में वनों का विशेष महत्व होता है। तीव्र गति से हो रहे औद्योगीकरण के पश्चात वन सम्पदा की रक्षा जरूरी हो जाती है। वर्तमान में औद्योगीकरण एवं तकनीकी विकास के फलस्वरूप पर्यावरण के असन्तुलन की समस्या गम्भीर हो गई है। इसलिये भी वन सम्पदा की रक्षा आवश्यक है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत में बहुत से वन नष्ट हुए हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के समय भारत के 32 करोड़ 90 लाख हैक्टेयर भाग में से सात करोड़ 50 लाख हैक्टेयर क्षेत्र वनों से ढका हुआ था। उद्योग समूहों के विस्तार और शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, वनों की कटाई के परिणाम स्वरूप वन क्षेत्र में काफी कमी आई और अब 22 प्रतिशत के स्थान पर केवल 10 प्रतिशत भू-प्रदेश ही वनों से सम्पन्न हैं। इसीलिये छठी और सातवीं पंचवर्षीय योजनाओं में व्यापक स्तर पर कार्यक्रम चलाये गये जिससे कि वनों के विकास की ओर ध्यान दिया जा सके। क्योंकि वनों से न केवल पर्यावरण सन्तुलन बना रहता है, बल्कि हमारी अनेक प्रकार की आवश्यकताएं भी पूरी होती हैं। इसके अतिरिक्त हमारे देश की बहुत-सी जातियां वनों से अपनी आय प्राप्त करती हैं। यही नहीं, किसी भी देश की सभ्यता व संस्कृति वनों के अस्तित्व के ऊपर ही निर्भर करती है। हमारी संस्कृति की यह विशेषता रही है कि वह मनुष्य को 'प्रकृतिपुत्र' मानती है। हमारे देश की संस्कृति, प्रकृति व धर्म वृक्ष पूजा से जुड़ी है। वनों से हमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं।

महत्व

बहुत से उद्योगों के लिये कच्चे माल की प्राप्ति वनों से ही होती है। जैसे रबर, दियासलाई, कागज आदि। वनों से अनेक प्रकार की सहायक उपजें प्राप्त होती हैं जिनका उपयोग विभिन्न प्रकार के उद्योगों और व्यवसायों में किया जाता है। बहुत-सी जड़ी-बूटियां जो औषधि के रूप में प्रयोग की जाती हैं वनों की ही देन हैं। भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में चरागाहों का विशेष महत्व है। पशुधन का अस्तित्व चरागाहों की उपलब्धि पर निर्भर करता है। पशु सम्पदा अनेक प्रकार के सहायक उद्योग धन्धों की भी उपलब्धि कराती है। इसलिये पशुओं के लिये चरागाह होने जरूरी होते हैं अतः पशुओं को घास, पत्ते आदि वनों से ही प्राप्त होते हैं। कुछ उद्योग वनों पर ही निर्भर करते हैं। जैसे कि कागज उद्योग वनों से प्राप्त लकड़ी की प्राप्ति पर निर्भर करता है। भारत के अनेक लघु उद्योग और कुटीर उद्योग जैसे बांस, बेंत, दियासलाई उद्योग, मोम, शहद आदि प्रत्यक्ष रूप से वनों पर निर्भर करते हैं। इन उद्योगों के विकास के लिये यह जरूरी है कि जिन क्षेत्रों में वन हैं उन क्षेत्रों की रक्षा की जाये।

भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिये खाद की आवश्यकता होती है जो वृक्षों की पत्तियों और पेड़ों आदि से मिलती है। यहां तक कि पशुओं से प्राप्त होने वाली खाद भी प्राकृतिक रूप से वनों के अस्तित्व पर निर्भर करती है। राज्य और केन्द्रीय सरकारों को 500 करोड़ रुपये से भी अधिक का राजस्व वनों के विभिन्न उत्पादनों से प्राप्त होता है। विदेशी मुद्रा की प्राप्ति में भी वन उत्पादन मदद पहुंचाते हैं। अनेक प्रकार की जड़ी बूटियां, शहद, बांस आदि भी दूसरे देशों को निर्यात किये जाते हैं। लकड़ी न केवल ईंधन बल्कि विभिन्न प्रकार के कार्यों में भी प्रयुक्त की जाती है जो वनों से ही प्राप्त होती है। कहा जाता है कि भारत के वनों से चार हजार प्रकार की लकड़ियां प्राप्त होती हैं। इनका व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्व है। वनों से बबूल, सागवान, शीशम, देवदार जैसी लकड़ियां मिलती हैं जिनका उपयोग फर्नीचर व निर्माण कार्यों तथा नावें आदि बनाने में किया जाता है। इस प्रकार जहाज

निर्माण जैसे विशाल उद्योग भी वनों पर निर्भर करते हैं। जंगली जानवरों का जीवन भी वनों पर निर्भर करता है। जानवरों से चमड़े, फर, पंख, हाथीदांत आदि उपलब्ध होते हैं। विभिन्न प्रकार के पशु और पक्षियों से प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने में मदद मिलती है। इस प्रकार पर्यावरण की दृष्टि से भी वनों का बड़ा महत्व है।

वनों से बाढ़ नियंत्रण में भी सहायता मिलती है। वृक्षों की जड़ें पानी को सोख लेती हैं और बाढ़ को रोकती हैं। इस प्रकार वृक्षों की सघनता एवं गहनता पानी के वेग को रोककर बाढ़ से होने वाली क्षति से समाज को बचाती है। वर्षा और वनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनसे वर्षा सन्तुलित होती है। जब वर्षा सन्तुलित होती है तो वनों का आकार भी बढ़ता है। इस प्रकार एक ओर घने वन वर्षा को आकर्षित करते हैं तो दूसरी ओर वृक्षों के जीवन को बनाये रखने में सहायता मिलती है। सघन वन प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ाते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य से विदेशी पर्यटक आकर्षित होते हैं और विदेशी मुद्रा अर्जन में मदद मिलती है। रेगिस्तान के विस्तार पर वनों की उपस्थिति से नियंत्रण रखा जा सकता है। रेगिस्तान के बढ़ते हुए क्षेत्र को नियंत्रित करने का प्रभावशाली तरीका वृक्ष ही है। वनों का सुरक्षा की दृष्टि से भी विशेष महत्व है। सघन वन हवाई हमलों से देश की रक्षा करने में मदद करते हैं। इस प्रकार वन एक सफल प्राकृतिक बाधा निर्मित करते हैं जिससे युद्ध में अर्थव्यवस्था की रक्षा होती है।

इस प्रकार वन विभिन्न प्रकार से समाज की सेवा करते हैं। जहां सघन वन होते हैं वहां शुद्ध आक्सीजन जन साधारण को प्राप्त होती है और जनता का स्वास्थ्य ठीक रहता है। विभिन्न प्रकार की बीमारियां भी शुद्ध वायु से दूर होती हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि औद्योगीकरण के फलस्वरूप वायु प्रदूषण बढ़ गया है अतः वनों की रक्षा बड़ी महत्वपूर्ण है। इन सभी के होते हुए भी भारत में वन नष्ट हो रहे हैं जिनके निम्न कारण हैं :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में बहुत कारणों से वन नष्ट हुए हैं। जहां एक ओर विभिन्न प्रकार की नदी घाटी परियोजनाओं के फलस्वरूप वृक्ष बड़े पैमाने पर काटे गये हैं वहां औद्योगीकरण के कारण भी वन नष्ट हुए हैं। इसके अतिरिक्त अनेक राज्यों में वन भूमि को कृषि क्षेत्र बना दिये जाने के कारण भी वन समाप्त होते जा रहे हैं। भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण आवास सुविधाओं की आवश्यकतायें बढ़ गई हैं। इसके कारण भी भारत का बहुत-सा वन क्षेत्र नष्ट हो गया है। यही नहीं, चरागाह के रूप में भी वन क्षेत्र का अनियन्त्रित तरीके से उपयोग किया गया है। ग्रामीण क्षेत्र में जन भार के कारण बहुत बड़ा वन भू-क्षेत्र कृषि कार्य के लिये लिया गया। इससे भी वृक्ष नष्ट हुए हैं। इसके अतिरिक्त वनों से विभिन्न प्रकार की वस्तुयें प्राप्त करने के लिये राज्य सरकारें जो ठेके देती हैं, उनसे सम्बन्धित ठेकेदारों ने भी वनों को नष्ट किया है। शरणार्थियों की पुनर्वास योजनाओं, औद्योगिक इकाइयों की बड़े पैमाने पर स्थापना के कारण भी वन नष्ट हुए हैं।

भारत में योजना काल के प्रारम्भिक वर्षों में वन सम्पदा की रक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इन्हीं कारणों से वन नष्ट हो रहे हैं और वनों की उत्पादकता बहुत कम है। इसके अतिरिक्त वनों के विस्तार के लिये भी विशेष कार्यक्रम नहीं तैयार किये गये। वन प्रबन्ध भी अत्याधिक अकुशल रहा है। अन्य देशों की तुलना में भारत में वनों के अन्तर्गत बहुत कम भू-क्षेत्र है। जापान में कुल भू-क्षेत्र का 55 प्रतिशत वनों के अन्तर्गत आता है। इसी प्रकार चीन के कुल भू-क्षेत्र के 40 प्रतिशत भाग पर वन फैले हुए हैं जबकि भारत में केवल 22 प्रतिशत भू-क्षेत्र पर वनों का विस्तार है। इसलिये स्पष्ट है कि यहां अन्य देशों की अपेक्षा वन क्षेत्र बहुत कम है। अत्याधिक कम भू-क्षेत्र में वनों का विकास एवं भारत के वनों की अत्याधिक निम्न उत्पादिता के कारण ही एक व्यापक वन नीति बनाये जाने की आवश्यकता अनुभव की गई और चौथी पंचवर्षीय योजना के पश्चात् वनों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया।

भारत में सर्वप्रथम वन नीति पिछली शताब्दी में सन् 1894 में घोषित की गई थी। परन्तु उसके पश्चात इस दिशा में कोई विशेष कदम नहीं उठाया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1952 में एक राष्ट्रीय वन नीति की घोषणा की गई। इस वन नीति की रचना, देश में तीव्र गति से हो रहे औद्योगीकरण पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, योजनाबद्ध विकास के शुभारम्भ के उपरान्त की गई थी। राष्ट्रीय वन नीति के अन्तर्गत यह निर्धारित किया गया था कि पूरे भारत के 33.3 प्रतिशत भू-क्षेत्रों पर वन होने चाहिये। पहाड़ी क्षेत्रों में 60 प्रतिशत और मैदानी क्षेत्रों में 20 प्रतिशत हिस्से पर वन क्षेत्र आवश्यक होना चाहिये। वन नीति के निम्न उद्देश्य राष्ट्रीय वन नीति के अन्तर्गत घोषित किये गये थे। वन साधनों का दीर्घकालीन विकास और भविष्य में इमारती लकड़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था इस वन नीति के मुख्य उद्देश्य थे। इस नीति के अन्तर्गत कुछ तथ्यों पर विशेष बल दिया गया था, जैसे भूमि का सन्तुलित विकास, पर्वतीय क्षेत्रों में बाढ़ नियंत्रण, समुद्री इलाकों और रेगिस्तान की भूमि की रेत को आगे बढ़ने से रोकना, प्राकृतिक व जलवायु सम्बन्धी सुधार हेतु वन क्षेत्र विस्तार, पशुओं के लिए घास तथा खेती के औजारों, ईंधन पूर्ति के लिये लकड़ी आदि की पूर्ति, सुरक्षा, परिवहन आदि उद्योगों के लिये लकड़ी, वन प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी कर्मचारियों को

प्रशिक्षण और वनों से सम्बन्धित अनुसंधान को प्रोत्साहन प्रदान करना परन्तु इन कार्यों और उद्देश्यों को पूरी तरह लागू नहीं किया जा सका।

योजनाकाल में वनों की प्रगति

प्रथम योजना में वनों के विकास पर 8.5 करोड़ रुपये राशि खर्च की गई थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में 21.2 करोड़, तीसरी पंचवर्षीय योजना में 40 करोड़ तथा चतुर्थ योजना में 90 करोड़ रुपये खर्च किये गये। पांचवीं योजना में वनों के विकास के लिये 621 करोड़ रुपये तथा छठी पंचवर्षीय योजना में 700 करोड़ रुपये की राशि खर्च की गई थी। इन योजनाओं में लकड़ी के उत्पादन, बागानों का विस्तार, मिश्रित बागानों का विस्तार, घटिया वन क्षेत्रों का विकास, सड़क, रेल आदि के किनारे वृक्षारोपण, सामाजिक वन कार्यक्रम को प्रोत्साहन, ठेकेदारी प्रथा की समाप्ति आदि को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना अन्तर्गत वनों के विकास के लिये विशेष कार्यक्रम बनाये गये। इस वन नीति के अन्तर्गत पर्यावरण सुरक्षा, ग्रामीण, लघु और बड़े पैमाने के उद्योगों की जरूरतों और जनसाधारण की ईंधन और चारे की जरूरतों को पूरा करने पर बल दिया गया। इस योजना की अवधि में साठ लाख हैक्टेयर भूमि पर उत्पादन वन कार्यक्रम किये गये। पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में पैंतीस लाख हैक्टेयर भूमि पर वृक्षारोपण किये गये जबकि छठी पंचवर्षीय योजना के पांच वर्षों की अवधि में 22 लाख हैक्टेयर भूमि पर वृक्षारोपण कार्य किया गया। इसके पश्चात पंचवर्षीय योजना में वन नीति के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं:

1. पर्यावरण सुरक्षा।
2. सामाजिक एवं फार्म व अन्य कार्यों द्वारा बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण।
3. जन साधारण की ईंधन, चारा व घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति।
4. सामाजिक वन कार्यक्रमों एवं जनजाति के कल्याण के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध।
5. बड़े पैमाने पर जन साधारण को वन नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सक्रिय करना। योजना के अन्तर्गत वन क्षेत्र के लिये जो लक्ष्य रखे गये हैं, उनके अतिरिक्त ग्रामीण विकास, कृषि आदि से सम्बन्धित विभाग भी वन विकास कार्यक्रम चलाते हैं। विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध साधन को ध्यान में रखते हुए 50 लाख हैक्टेयर भूमि पर वृक्षारोपण कार्य किया जा सकेगा यह अनुमान है।

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम

सन् 1980 से पूर्व वनों का विकास, फार्म वृक्षारोपण के माध्यम से किया जाता था। फार्म वृक्षारोपण का प्रमुख उद्देश्य लकड़ी प्राप्त करना था। परन्तु सामाजिक दृष्टि से वन सम्पत्ति की रक्षा के लिये कोई अलग से कार्यक्रम नहीं चलाया गया था। अतः जनसाधारण को वन कार्यक्रमों में शामिल किये जाने के लिये सामाजिक वानिकी कार्यक्रम शुरू किये जाने जरूरी थे। सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य कृषि के लिये चारा, लट्ठों की पूर्ति, मनोरंजन के स्थानों का विकास, कृषि भूमि का तेज हवाओं से बचाव और भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में खाद के लिये कार्यक्रम चलाना है। किसानों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अपने खेत के चारों और वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। इस कार्यक्रम से न केवल किसानों की ईंधन और चारे की जरूरतें पूरी की जाती हैं, वरन् फसलों की रक्षा भी की जाती है। सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अन्तर्गत, छठी पंचवर्षीय योजना में केन्द्र द्वारा संचालित ग्रामीण ईंधन की लकड़ी के बागानों का एक कार्यक्रम शुरू किया गया। ईंधन की लकड़ी के अभाव वाले 101 जिलों की शिनाख्त की गई और विशेष कार्यक्रम शुरू किये गये। 1982-83 तक केन्द्र द्वारा संचालित कार्यक्रम 157 जिलों में शुरू किये जा चुके थे। इसके अन्तर्गत 5800 लाख पौधे जनता में निःशुल्क वितरित किये गये। सामाजिक वानिकी कार्यक्रम की उपलब्धियां इस प्रकार स्पष्ट की गई हैं:

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम : वृक्षारोपण

(हजार हैक्टेयर में)

वर्ष	लक्ष्य	उपलब्धि
1980-81	152	153
1981-82	289	254
1982-83	339	375
1983-84	400	422
1984-85	450	451
कुल योग	1630	1655

ईंधन की लकड़ी की मांग तेजी से बढ़ने के कारण सातवीं योजना में इस ओर विशेष ध्यान दिया गया। ग्रामीण ईंधन की लकड़ी के बागानों के कार्यक्रम को देश के सभी अभाव ग्रस्त जिलों में क्रियान्वित करने का लक्ष्य रखा गया है। सातवीं योजना में 8000 लाख पौधे जनता में वितरित किये जाने का लक्ष्य था।

सड़क के दोनों ओर वृक्षारोपण

वन विकास के लिये यह आवश्यक है कि एक दीर्घकालीन योजना बनाई जाये जिसके अन्तर्गत इस शताब्दी के अन्त तक वनों के विकास की नीति, उद्देश्यों और लक्ष्यों को निर्धारित किया जाना चाहिए। जो उद्योग वनों से प्राप्त कच्चे माल पर निर्भर करते हैं उन्हें कच्चे माल के स्रोतों की खोज करनी चाहिए। केन्द्रीय सरकार को उन उद्योगों को अनुसंधान कार्यों के लिये सहायता देनी चाहिये जो अपने कच्चे माल के लिये वनों पर निर्भर करते हैं। राज्य सरकार को एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था तैयार करनी चाहिये जिससे अनियन्त्रित तरीके से वनों को नष्ट न किया जाये। राष्ट्रीय वन नीति तथा सातवीं पंचवर्षीय योजना के जो लक्ष्य हैं उन्हें प्राप्त करने की कोशिश की जानी चाहिये। दीर्घकालीन राष्ट्रीय वन नीति तथा 1952 की राष्ट्रीय वन नीति के आधार पर एक सुदृढ़ एवं पर्याप्त साधनों वाली दीर्घकालीन योजना की सहायता से भारतीय वन सम्पदा का विस्तार किया जा सकता है एवं वर्तमान में जो वन सम्पदा है उसकी रक्षा में मदद मिल सकती है।

द्वारा अशोक कुमार सेठी,
मकान नं. 541, रेलवे रोड,
नजदीक पेट्रोल पम्प,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

सामाजिक वानिकी और गांव

सुरेन्द्र द्विवेदी

ग्रामीण जीवन और वनों का युगों से अटूट सम्बन्ध रहा है। प्राचीन काल से भारतीय जीवन की धारा वनों से प्रवाहित हुई है। वनों ने यहां के जीवन दर्शन, व्यवहार और सोच को प्रभावित किया है। इसी कारण भारतीय संस्कृति और उसके चिंतन में वन गमन का एक आदर्श स्थान रहा है। महर्षि बाल्मीकि और भगवान राम इसी वन की देन रहे हैं। भगवान बुद्ध को भी पेड़ के नीचे ही ज्ञान बोध हुआ था। वैचारिक योगदान के अलावा वनों की ग्रामीण जीवन के आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कृषि का बंदोबस्त और ईंधन की आपूर्ति का स्रोत वन ही रहे हैं।

परन्तु आबादी में तेजी से वृद्धि, कृषि एवं औद्योगिक क्रांति, परिवहन व्यवस्था के तेजी से विकास तथा ईंधन के दबाव के कारण चालू शताब्दी के दौरान वनों का धुंआधार विनाश हुआ। वनों की सघनता तो कम हुई ही है उसकी सीमायें भी धीरे-धीरे सिमट गईं। गांवों के आसपास हरियाली के उजाड़ और नंगे बीहड़ क्षेत्रों के कारण न केवल भूमि के कटाव, ईंधन की कमी की समस्या पैदा हुई है वरन पर्यावरण के प्रदूषण को भी बल मिला है।

स्वतंत्रता के बाद वनों पर बढ़ते हुए दबाव को रोकने के लिए सन् 1952 में राष्ट्रीय वन नीति स्वीकार की गई थी, जिसमें देश के एक तिहाई भू-भाग में वनों को सुरक्षित रखने का संकल्प व्यक्त किया गया है। परन्तु चालू दशक तक देश का वन क्षेत्र घटकर 22.8 प्रतिशत रह गया है। इस समय देश में कुल 7.56 करोड़ हैक्टेयर वन क्षेत्र है जबकि स्वीकृत वन नीति के अन्तर्गत देश में 11 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में वन होने चाहिए। यानी देश में निर्धारित मात्रा से 3.5 करोड़ हैक्टेयर वन क्षेत्र की कमी है। इसके अलावा इस पूरे वन क्षेत्र में घने जंगल नहीं हैं। काफी कुछ उजाड़ हैं।

गुजरात, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, पंजाब और राजस्थान ऐसे राज्य हैं जहां पर वनों का क्षेत्र घटकर 10 प्रतिशत ही रह गया है। अन्य विकसित देशों की तुलना में भी भारत के वन क्षेत्र की स्थिति संतोषजनक नहीं है। कनाडा में 35 प्रतिशत, पश्चिम जर्मनी में 28 प्रतिशत, संयुक्त राज्य अमेरिका में 31 प्रतिशत, सोवियत संघ में 41 प्रतिशत और जापान में 67 प्रतिशत वन क्षेत्र हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के कृषि एवं खाद्य संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में कुल वन क्षेत्र 7.56 करोड़ हैक्टेयर के बजाय केवल 5.2 करोड़ हैक्टेयर इलाके में ही वन उपलब्ध हैं। विश्व में वन क्षेत्र का औसत 30 प्रतिशत है। विश्व की कुल आबादी की 15 प्रतिशत जनसंख्या भारत में है। परन्तु इसकी तुलना में भारत में वन केवल दो प्रतिशत इलाके में ही हैं। इसके अलावा भारत में विश्व के अन्य देशों की तुलना में पशुओं की संख्या सर्वाधिक है। इनके लिए भी वन क्षेत्र की जरूरत होती है।

बढ़ती आबादी और घटते वनों के परिदृश्य में 1976 में राष्ट्रीय कृषि आयोग ने पहली बार सामाजिक वानिकी (सोसल फोरेस्ट्री) शब्द की कल्पना की थी। वैसे ग्रामीण आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए ग्रामीण वनों की कल्पना नयी नहीं है। इस प्रकार के वनों की कल्पना राष्ट्रीय वन नीति में भी की गई थी। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस शताब्दी की शुरुआत के पहले देश के गांवों के समीप वनों का अस्तित्व रहा है या यों कहा जाये कि वनों और जल स्रोतों के समीप ही गांवों का विकास हुआ है। ब्रिटिश काल के 1927 के तट सम्बन्धी अधिनियम में ग्रामीण वनों के प्रबन्ध की बात कही गई है।

आठवें दशक के मध्य में राष्ट्रीय कृषि एवं खाद्य आयोग ने अहसास किया कि राष्ट्रीय वन नीति के बावजूद वन क्षेत्र घट रहा है। वन उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को प्राकृतिक वनों से ही पूरा नहीं किया जा सकता है। इसके लिए निर्धारित वन क्षेत्र के अलावा गांवों, सड़कों और रेल पटरियों के आस-पास पड़ी परती भूमि पर सरकारी और गैर सरकारी तरीकों से पेड़ और वन उगाने का काम हाथ में लेने की जरूरत है। इससे न केवल कृषि, ईंधन एवं अन्य आर्थिक जरूरतें पूरी होंगी, लोगों को

रोजगार भी मिलेगा और पर्यावरण में परिवर्तन हो सकेगा। इससे आरक्षित वनों पर दबाव कम हो सकेगा और उन्हें उजड़ने से बचाना आसान होगा।

योजना आयोग के एक अनुमान के अनुसार देश में करीब पांच करोड़ हैक्टेयर बंजर क्षेत्र उपलब्ध है। इसमें से करीब 15 प्रतिशत इलाका पेड़ पौधे लगाने के योग्य हो सकता है। सड़कों, रेल लाइनों और नहरों के किनारे पेड़ पौधे लगाने के लिए करीब नौ लाख हैक्टेयर भूमि प्राप्त हो सकती है। इसके अलावा एक करोड़ क्षेत्र में उजड़े वन हैं। खेतों के किनारे भी काफी भूमि पेड़ों को लगाने के लिए मिल सकती है। इसके अतिरिक्त नदी और नालों के किनारे भी परती जमीन का भी उपयोग वनारोपण के लिए किया जा सकता है।

राष्ट्रीय वन नीति के अन्तर्गत विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में वनरोपण को प्रोत्साहन दिया गया। वर्ष 1979-80 तक 14 लाख हैक्टेयर क्षेत्र से अधिक इलाके में पेड़ लगाये गये जिन पर करीब 95 करोड़ रुपये खर्च किये हैं। इसका एक दूसरा पहलू यह भी है कि पेड़ तो लगाये गये लेकिन उनका रख-रखाव न होने के कारण अधिक संख्या में पौधों की अकाल मौत हो जाती है और कई बार क्षेत्र खाली का खाली रह जाता है। जरूरत इस बात की है कि पेड़ लगाने के साथ-साथ उनके रख-रखाव की व्यवस्था बरकरार रहनी चाहिए। आखिर पेड़ों को भी बच्चों जैसी देख-रेख की जरूरत होती है। चौथी योजना तक यह काम धीमी गति से चला था लेकिन पांचवीं योजना में इसमें तेजी लाई गई। चौथी योजना तक केवल सरकारी परती भूमि पर ही वनारोपण का काम सीमित था। पांचवीं योजना अवधि में गांव समाज की परती भूमि पर भी पेड़ लगाने का काम शुरू किया गया और छठी योजना में सामाजिक वानिकी योजना को राज्यों को सौंप दिया गया।

केन्द्र सरकार को शीघ्र ही इस बात का अहसास हुआ कि इस वानिकी योजना को केन्द्र के तत्वावधान में चलाया जाना जरूरी है। इसके अंतर्गत केन्द्र सरकार की आर्थिक मदद से हर राज्य के एक चौथाई जिलों में वृक्षारोपण का कार्यक्रम चलाया गया। इस कार्यक्रम में अनेक किसान निजी तौर से अपने खेतों में वृक्षारोपण करने के काम में आगे आये। इसके साथ ही किसानों को मुफ्त पौध सुलभ कराने का सिलसिला भी शुरू किया गया। इसी के साथ हर बच्चे के लिए एक फलदार पेड़ लगाने की कल्पना भी जोड़ी गई। छठी योजना में कार्यक्रम के लिए 97 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई जिसमें 50 करोड़ रुपये केन्द्र सरकार से सहायता के रूप में प्राप्त था। कुल योजना काल में 2.60 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में पेड़ लगाने के लिए 58 करोड़ पौध मुफ्त वितरित की गई। परन्तु इसमें भी अनेक व्यावहारिक बाधायें खड़ी हुई। अनेक जिलों में निर्धारित भूमि लोगों द्वारा दखल कर लिए जाने अथवा चरागाह होने के कारण वनारोपण के लिए सुलभ नहीं हो सकी।

सामाजिक वानिकी को मजबूत एवं व्यापक आधार प्रदान करने के लिए इसी योजना काल में विश्व बैंक जैसी कई वित्तीय संस्थाओं की सहायता से काम शुरू किया गया। इसमें अमेरिका, स्वीडन तथा हालैण्ड की वित्तीय संस्थाओं की मदद से कुछ परियोजनायें शुरू की गई। गुजरात और उत्तर प्रदेश ने इस प्रकार परियोजनाओं के लिए विश्व बैंक से ऋण प्राप्त किया। इसके अलावा उड़ीसा, बिहार, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में भी इसी प्रकार की परियोजनाओं पर काम शुरू किया गया। नये बीस सूत्री कार्यक्रम में भी सामाजिक वानिकी को जोड़ा गया। राज्यों के लिए वृक्षारोपण के निश्चित लक्ष्य निर्धारित किये गये और उनकी निगरानी की भी व्यवस्था की गई।

सातवीं योजना में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम को और मजबूत बनाने का प्रयास किया गया। ईंधन, औद्योगिक लकड़ी की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के संदर्भ में सामाजिक वानिकी के विस्तार पर बल दिया गया। योजना आयोग के आकलन के अनुसार ईंधन की लकड़ी की मांग उसकी आपूर्ति की तुलना में तेजी से बढ़ी है। इस मांग को पूरा करने के लिए प्रति वर्ष 15 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में वनारोपण करने के लिए 80 करोड़ पौधे लगाने के लिए मुफ्त वितरित करने की जरूरत होगी। इस उद्देश्य से सातवीं योजनावधि में केन्द्रीय सामाजिक वानिकी योजना को उन सभी जिलों में लागू किया गया जहां पर ईंधन की लकड़ी की कमी है। इसके साथ ही अनुसूचित जनजाति बहुल इलाकों में वनों के विकास पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया क्योंकि अनुसूचित जनजातियों और वनों का गहरा सम्बन्ध है। उनका जीवन और जीविका उसी पर निर्भर करती है। इन इलाकों में वनों पर आधारित घरेलू उद्योगों को बढ़ाने पर बल दिया गया।

वनों की लकड़ी पर देश में बड़ी संख्या में छोटे-बड़े उद्योग निर्भर करते हैं। भवन निर्माण के अलावा रेलवे स्लीपरों, फर्नीचर, पलाईवुड तथा कागज के लिए बड़ी मात्रा में लकड़ी की जरूरत होती है। योजना आयोग के एक आकलन के अनुसार वर्ष 2000 तक देश में 3.75 करोड़ घन मीटर औद्योगिक लकड़ी की जरूरत होगी जबकि उस तक 1.9 करोड़ घन मीटर लकड़ी का उत्पादन हो सकेगा अर्थात मांग की तुलना में मात्र आधी लकड़ी देश में उपलब्ध होगी। इस कमी को पूरा करने के लिए अतिरिक्त भूमि में प्रतिवर्ष वन लगाने की जरूरत होगी। वन क्षेत्र में पूंजी निवेश के लिए योजना आयोग

ने राज्य स्तर पर वन विकास निगम स्थापित करने का सुझाव दिया है। परन्तु इस दिशा में कोई खास प्रगति नहीं हुई है। लकड़ी की वर्तमान कमी को देखते हुए केन्द्र सरकार ने लकड़ी पर उद्योगों के लिए नये लाइसेंस न देने का भी फैसला किया है।

ग्रामीण इलाकों में बहुत सारे कुटीर उद्योग वन सम्पदा पर निर्भर करते हैं। बांस, बेंत जैसी वन सम्पदा पर ग्रामीण इलाकों में बड़ी संख्या में लोगों को टोकरियां और फर्नीचर बनाने का काम मिलता है। उत्तर पूर्वी राज्यों में टसर किस्म की रेशम भी इन्हीं जंगलों में पैदा की जाती है। फल और फूल भी यहीं से मिलते हैं। शहद की मक्खियां भी इन्हीं वनों में अपना बसेरा बनाती हैं। परन्तु जंगलों के नष्ट होने के कारण ये छोटे मोटे धंधे भी नष्ट हो रहे हैं। पशुओं को भी चारा यहीं से मिलता है। जंगल साफ होने से चारे की कमी हुई है जिससे दुधारू पशुओं पर असर हुआ है। इसी के साथ ग्रामीण इलाकों की पशु सम्पदा घटी है और लोगों की रोजी-रोटी का पुराना आधार टूटा है।

हिमालय जैसे विशाल क्षेत्र वनों की कटाई से बुरी तरह से नंगा हो रहा है। वहां लोगों के ईंधन के लिए पेड़ काटने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। इस सब का असर भूमि के क्षरण और कटाव पर हुआ है। पहाड़ों की हरियाली कम हुई है और पहाड़ों के खिसकने की घटनायें बढ़ी हैं। इस पहाड़ी क्षेत्र में पुनः बड़ी मात्रा में वन लगाये जाने का कोई विकल्प नहीं है।

वन ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक एवं औद्योगिक पक्ष को मजबूत बनाने के साथ-साथ भूमि संरक्षण का काम करते हैं। पेड़ों की कमी से पर्यावरण दूषित होता है और सामूहिक स्वास्थ्य में गिरावट आती है। पेड़ों से घिरे वातावरण में काम की क्षमता और स्वास्थ्य बेहतर होता है। एक अनुमान के अनुसार एक हैक्टेयर क्षेत्र में सघन पेड़ एक वर्ष में वातावरण में व्याप्त करीब साढ़े तीन टन दूषित गैस कार्बन डाईआक्साइड को हजम कर जाते हैं तथा करीब दो टन जीवन रक्षक आक्सीजन को छोड़ते हैं। इसके अलावा वन बाढ़ और सूखे से भी रक्षा करते हैं वर्षा को संतुलित करते हैं।

देश में वनों की दयनीय स्थिति को देखते हुए राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड की स्थापना की गई है। देश में करीब पांच करोड़ हैक्टेयर इलाका ऐसा है जो बंजर है और उससे कोई उत्पादक लाभ नहीं होता है। इस बंजर क्षेत्र को हराभरा बनाने की दिशा में यह बोर्ड काम कर रहा है। बंजर भूमि के विकास और वनारोपण की रणनीति तैयार करने का दायित्व इसी बोर्ड पर है। फिर भी आधुनिक युग की आवश्यकताओं और चुनौतियों का सामना करने के लिए न केवल बंजर भूमि के विकास की जरूरत है वरन व्यापक हित में वनों का संरक्षण और संवर्द्धन जरूरी है।

8, कनाट लेन, नई दिल्ली

सघन वन ही प्रदूषण पी जाते हैं

जगदीश चन्द्र शर्मा

आयोजक—हमारे नन्हें-नन्हें बाल-कवियों ने सघन वन के महत्व को समझा है। आज पर्यावरण में जो कुछ प्रदूषण हो रहा है उसे इन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया है। हम भी चाहते हैं कि प्रदूषण पर रोक लगे और हमारा पर्यावरण शुद्ध हो। ये कविगण भी चाहते हैं कि प्रदूषण जल्दी से जल्दी मिटे और हम सब आनंदमय वातावरण में जिएं। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए हमें अत्यंत श्रम करना होगा। जिन—जिन कारणों से प्रदूषण का फैलाव हो रहा है उन पर विशेष ध्यान देकर उनसे मुक्ति पाने का उपाय करना होगा। देश के विभिन्न भागों से ये कविगण आए हैं। पर्यावरण जैसे विषय पर पहली बार पद्य-प्रवाह हो रहा है। सबसे पहले मैं, बाल कवि 'विन्ध्याचल-' को आमंत्रित करता हूं। वे कार्यक्रम का प्रारंभ करें—

विन्ध्याचल—पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने में वनों का महत्वपूर्ण योगदान है। ज्यों-ज्यों वन कटते जा रहे हैं, पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है। घने वनों में जहां वन्य जन्तुओं की संख्या अधिक होती थी अब उनकी संख्या घटती जा रही है। हमारा कर्तव्य है कि हम वन्य-प्राणियों की संख्या बढ़ाएं क्योंकि वन्य-प्राणी वन के रक्षक भी होते हैं। उनके डर से वनों का विनाश करने वाले लोग वनों में जाने से कतराते हैं। पद्य है—

'वन्य जन्तु-वन रक्षक'

वन्य जंतु हैं
वन के रक्षक;
डरते हैं उनसे
वन-भक्षक।
पाबन्दी दृढ़
हो शिकार पर;
दया-भाव का
लहरे सागर।

आयोजक अब मैं आमंत्रित कर रहा हूं बाल-कवियित्री 'नर्मदा' को—

नर्मदा—पर्यावरण के संकट को मिटाने के लिए हमें अपने पशुओं पर विशेष ध्यान देना होगा। पशुओं का संबंध भी प्रकृति से सीधा जुड़ा हुआ है। पशुओं की कमी यह बताती है कि प्रकृति में कहीं न कहीं अभाव की स्थिति बनी हुई है। पशुओं की अधिकता प्रकृति की सम्पन्नता प्रकट करती है। प्रकृति की सम्पन्नता पर ही पर्यावरण का संरक्षण होता है। देखिए,

पशु

पशु हैं सच्चे मित्र हमारे,
गौरव है सचमुच पशुधन;
आठों याम हमें करना है
सही ढंग से पशु-पालन।
पशुओं के भी योगदान से
होता पर्यावरण सरस;
पशुओं से बढ़ता है नई
सजावट करने का साहस।

आयोजक—बाल कवि 'सतपुड़ा' अपना पद्य-पाठ करेंगे—

सतपुड़ा—हरियाली में वह शक्ति है कि जो पर्यावरण के प्रदूषण को तेजी से मिटा सकती है। इसलिए हरियाली को बढ़ाने का अर्थ है पर्यावरण में शुद्धता बढ़ाना। प्रदूषण को दूर करना और संतुलन को बुलाना। मेरी कविता है—

– सजावट

जिन्होंने उगाई
हरियालियों को;
उन्होंने बढ़ाई
खुशहालियों को—
जिन्हें देख कर हम
नव उमंग पाते;
जिन्दगी के आंगन
को सदा सजाते।

आयोजक—बाल कवियित्री 'ताप्ती' से अनुरोध करता हूं कि वे पद्य प्रस्तुत करें—

ताप्ती—मैं, पर्यावरण में हो रहे प्रदूषण की एक झलक आपके सामने रखना चाहती हूं। विभिन्न मशीनों से जो कोलाहल होता है, धुआं निकलता है, व्यर्थ-पदार्थ बह कर उड़ कर बाहर आता है और गैसों का अम्बार लगता है। ये सब, अत्यंत भयावह स्थिति बना रहे हैं। मेरी कविता है—

इंजन

जहां कोयले से चलते हैं
भांति-भांति के इंजन—
वहां बना रहता है यंत्रों
से कोलाहल-कम्पन।
व्यर्थ-पदार्थ निकलता उनसे
घिरता धुआं उमड़ कर;
होता रहता ठोस कणों का
गैसों में रूपांतर।

आयोजक—बाल कवि 'अरावली' को न्योता दे रहा हूं। वे सुनाएं—

अरावली हरी फसलें, खिले हुए फूल और मोहक दृश्यावलियां सभी पर्यावरण को संतुलन प्रदान करते हैं। हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने के लिए इनका अधिक से अधिक विस्तार करें। मेरी कविता है—

मोहक दृश्यावलियां

हरी फसल जब हंसती-गाती,
हवा सुगंधित होती है;
खिले हुए फूलों से बगिया
अति आनंदित होती है।

मनमोहक दृश्यावलियों का
ठाठ अनोखा ही होता;
रोचक है मखमली दूब पर
अच्छी तरह लगे गोता।

आयोजक—बाल-कवयित्री 'गंगा' से कविता-पाठ करने के लिए निवेदन करता हूं—

गंगा—हम ज्यों-ज्यों अधिक सभ्य होते गए, हमने प्रकृति का निर्दयता से दोहन करना शुरू कर दिया। फलस्वरूप हम प्रदूषण के अभिशाप से पीड़ित हैं। अतः हम अपनी आदतों में सुधार लाकर प्रकृति का दोहन रोकें। मेरा पद्य है—

प्रकृति का दोहन

रुके प्रकृति का
निर्मम दोहन;
कुटिल आदतों
में हो शोधन।
लालच नहीं
उठा पाए सिर;
लक्ष्य यही
सर्वोत्तम आखिर।

आयोजक—बाल-कवि 'हिमालय' से प्रार्थना है कि वे अपने पद्य-पाठ से हमें लाभ पहुंचाएं—

हिमालय—पर्यावरण को ठीक-ठाक रखने के लिए हमें सघन वनों के महत्व को स्वीकार करना होगा। सघन वन पर्यावरण के प्रदूषण को पी जाते हैं, प्राण वायु प्रदान करते हैं और पर्यावरण को पोषण देते हैं। हमें सघन वनों का विकास करना चाहिए। कविता है—

सघन वन

सघन वनों से ही
आकर्षित होते बादल;
आवश्यकता पड़ते ही
बरसाते हैं जल।
इसी भांति मिल जाता है
हरियाली को बल;
विपुल सम्पदा पाता है
धरती का अंचल।

आयोजक—अंत में बाल-कवियित्री 'कावेरी' अपनी कविता सुनाकर आज के पद्य-प्रवाह को एक सुंदर यादगार के रूप में सौंपे—

कावेरी—प्रदूषण से हमारी धरती पीड़ित है, ध्वनि त्रस्त है और जल आक्रांत है। इन्हें पीड़ा-मुक्त करना हमारा कर्तव्य है। इसके लिए हम सब कटिबद्ध होकर जुट जाएं। मेरा पद्य है—

पर्यावरण-संरक्षण

धरती, ध्वनि, जल, पवन
सभी से मिटे प्रदूषण;
पर्यावरण सदा पाए
सुदृढ़ संरक्षण।
यत्न करें हम, सभी मशीनें
रहे नियंत्रित;
वन-विकास को करते हैं
हम सब आमंत्रित।

आयोजक—बाल-कवियों का यह पद्य-प्रवाह वास्तव में अतीव उत्साहवर्धक रहा। इसके लिए कवियों को हार्दिक धन्यवाद! इसे खूब पसंद किया गया। इसके लिए सभी को धन्यवाद!

जिला उदयपुर, राजस्थान,
पोस्ट गिलूंड-313207

वन विनाश के दुष्परिणाम

गणेश कुमार पाठक
अंजनी कुमार सिंह

वन किसी भी देश के पर्यावरण का एक प्रमुख अंग है। यह मानव की महत्वपूर्ण प्राकृतिक सम्पदा है, जिस पर न केवल हमारा पर्यावरण निर्भर है, बल्कि इससे उद्योगों के लिए कच्चा माल एवं अनेक साधन भी उपलब्ध होते हैं। इसके बावजूद भी कभी अज्ञानतावश, तो कभी जानबूझकर मानव द्वारा वनों की कटाई अधिक मात्रा में की जाती रही है। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ वनों को काटकर कृषि के लिए भूमि उपलब्ध की जाती रही है। सदियों से मकान बनाने के लिए, पुलों तथा नावों के निर्माण के लिए, इमारती सामान के लिए, घरों एवं कारखानों में ईंधन के लिए, पशुपालन के लिए विश्व भर में वन काटे जा रहे हैं। मनुष्य ने केवल वही भूमि वनों के लिए छोड़ी है जो कृषि या अन्य उपयोग में नहीं आ सकती। प्रारम्भ में जहां पृथ्वी के 70 प्रतिशत भू-भाग अर्थात् 12 अरब 80 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में वन थे वहीं आज केवल 16 प्रतिशत भू-भाग यानी 2 अरब हैक्टेयर क्षेत्र ही वनों से आच्छादित है।

इस प्रकार हमारे वनों पर गत शताब्दी में जिस बेरहमी से हमला हुआ है और उसका जितना विनाश किया गया है, उतना शायद ही किसी दूसरे अंग का किया गया हो। वन विभाग द्वारा प्रसारित अधिकृत आंकड़ों के अनुसार सन् 1951 और 1972 के बीच बांधों, नये खेतों, सड़कों और उद्योगों के कारण देश को 34 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र खोना पड़ा है। यानी वन विनाश की वार्षिक दर डेढ़ लाख हैक्टेयर रही है। लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि इस समय हर साल लगभग 10 लाख हैक्टेयर वन काटे जा रहे हैं। राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजन समिति की एक रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है कि देश का लगभग 12 प्रतिशत भू-भाग ही पर्याप्त हरियाली से आच्छादित है।

वन विनाश के कारण

भौतिकवादी सभ्यता के आज के युग में वनोत्पादों की मांग बढ़ी है, फलतः वन भी तेजी से लुप्त हो रहे हैं। कहीं कृषि विस्तार के लिए, तो कहीं नदी घाटी परियोजनाओं के द्वारा सिंचाई या विद्युत के लिए, तो कहीं शुद्ध व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए बड़े-बड़े वन क्षेत्र साफ किए जा रहे हैं। प्रतिदिन लाखों वृक्ष मानव की प्रगति की अंधी दौड़ के शिकार होते जा रहे हैं। इस प्रकार विश्व भर में वन क्षेत्र दिन प्रतिदिन संकुचित होते जा रहे हैं। वन विनाश के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

सरकार की दोषपूर्ण वन नीति

वर्तमान वन विनाश संकट का बीज अंग्रेजों द्वारा बनाई गई संकीर्ण वन नीतियों में छिपा है। उनकी दृष्टि भारत के वनों से अधिक से अधिक राजस्व कमाने भर की थी। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद भी वन विभागों के सामने वही व्यापारिक दृष्टि मुख्य बनी रही, जो ब्रिटिश सरकार द्वारा सन् 1865 ई. में लागू फारेस्ट एक्ट में थी। इस एक्ट में कृषि को वन के ऊपर प्राथमिकता दी गई। इसके पश्चात सन् 1879 ई. में वन अधिनियम के तहत वनों के तीन वर्ग निर्धारित किए गए (1) आरक्षित वन—ये वन सरकार के पूर्णतया अधीन माने गए, (2) संरक्षित वन—इसमें स्थानीय निवासियों के अधिकार को महत्व प्रदान किया गया, (3) ग्राम्य वन—इसमें सबको वनोत्पाद के उपयोग की पूर्ण स्वतंत्रता दी गई। इस तरह इस प्रक्रिया के अन्तर्गत वनों को मनमाने रूप से काटा जाने लगा। सन् 1927 ई. में चार संशोधन करके भारतीय वन अधिनियम लागू किया गया, जिसके अन्तर्गत सरकार को आरक्षित एवं अन्य वनों से लकड़ी एवं वन उत्पाद लेने पर शुल्क वसूलने की व्यवस्था थी। स्वतंत्रता के पश्चात सन् 1952 ई. में 'राष्ट्रीय वन नीति' घोषित की गई। इस नीति के अनुसार वनों से अधिकतम आय प्राप्त करना सरकार का मुख्य ध्येय हो गया।

सरकार की वन नीति के चलते ही 1950 से 1981 के मध्य कृषि फसलों के अंतर्गत क्षेत्र 1187.5 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 1429.4 लाख हैक्टेयर हो गया। कृषि फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में हुई 242 लाख हैक्टेयर की यह वृद्धि ग्रामीण अंचल में स्थित वृक्षाच्छादित भूमि को वृक्षविहीन करके प्राप्त की गई और वर्तमान स्थिति यह है कि भू-उपग्रहों से खींचे गये चित्रों के अनुसार हमारे देश में लगभग 350 लाख हैक्टेयर अर्थात कुल राष्ट्रीय क्षेत्रफल का लगभग 11 प्रतिशत ही वनाच्छादित रह गया है। यह लगभग उतना ही है जितना वर्ष 1950-51 में आरक्षित वन क्षेत्र राज्य सरकारों के वन विभागों के नियंत्रण में था।

अनियंत्रित पशुचारण

विश्व खाद्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार, "हमारे देश में चराई की समस्या बड़ी विकट है। 1975 में कुल विश्व पशुधन का 15 प्रतिशत भारत में था। इसमें 46 प्रतिशत भैंस, 17 प्रतिशत बकरियां, 15 प्रतिशत गाय एवं 4 प्रतिशत भेड़ें थीं। भारत के पहाड़ी इलाकों में काफी चराई होती है। लगातार

चराई और छंटाई होते रहने के कारण हिमालय के जंगलों का एक बहुत बड़ा भाग बस अब मामूली किस्म की झाड़ियों का इलाका बनकर रह गया है। इसके साथ-साथ पशुओं के पैरों से रौंदे जाने के कारण उपजाऊ धरती कड़ी हो चली है। अतः दुबारा जंगल उठने की स्थिति नहीं रही है और इस कारण अनेक भू-भागों में भू-क्षरण बढ़ रहा है।" रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि सिंचित और जुती जमीनी का क्षेत्रफल जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे चरागाह की भूमि घटती जा रही है और दूसरे किसी प्रकार के आकर्षक रोजगार के उपलब्ध न होने के कारण पशु चराने वाले लोग जंगलों में ही पशु चराने को मजबूर हो गए हैं। इससे भी जंगल खराब हो रहे हैं।

स्थानान्तरणशील अथवा झूम खेती

झूम खेती के कारण विश्व में उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों के वनों का तीव्रगति से विनाश होता जा रहा है। झूम खेती की इस पद्धति में किसी क्षेत्र की समस्त वनस्पति काटकर जला दी जाती है। वनस्पति दहन से उत्पन्न राख में उपस्थित अनिवार्य खनिज मृदा में मिलाकर उसकी उत्पादकता में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार समृद्ध मृदा में दो या तीन फसलें और ली जाती हैं। जब उर्वरकता घटने लगती है तो कृषक उस क्षेत्र को छोड़कर नये क्षेत्र साफ कर वहां भी इसी प्रकार फसल प्राप्त करते हैं। इस प्रकार समय-समय पर 'स्लैश या बर्न' विधि द्वारा खेती करने की इस पद्धति को 'स्थानान्तरी जुताई' या 'झूम खेती' कहा जाता है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में 3 करोड़ वर्गमील क्षेत्र में बसने वाले 20 करोड़ आदिवासी लोग इसी पद्धति से खेती करते हैं।

भारत के उत्तरी पूर्वी राज्यों में विशेष तौर से झूम खेती की जाती है, जिससे 15 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र प्रभावित है। उत्तरी पूर्वी राज्यों के कुल क्षेत्रफल का 5.6 प्रतिशत भू-भाग स्थानान्तरणशील कृषि से प्रभावित है। भारत में झूम खेती का प्रभाव लगभग 95 लाख हैक्टेयर वन भूमि पर पड़ता है। 'झूम खेती' से प्रतिवर्ष 4,53,000 हैक्टेयर क्षेत्र प्रभावित होता है।

वनों में आग लगना

समय-समय पर मनुष्य की लापरवाही अथवा अन्य किसी कारणवश वन क्षेत्र में लगने वाली आग से वन संसाधनों को अत्याधिक क्षति रही है। वनों में कई तरह से आग लगती है। एक तरह की आग भूमि की सतह पर लगती है जिससे बड़े वृक्षों को कोई विशेष हानि नहीं पहुंचती है। किन्तु इस तरह की आग से मिट्टी को प्राप्त होने वाले जैव पदार्थ नष्ट हो जाते हैं एवं वातावरण को भी नुकसान पहुंचता है। वनों में लगने वाली दूसरी प्रकार की आग को शीर्षाग्नि कहा जाता है। यह आग वृक्षों की पत्तियों एवं डालों को जलाती हुई हवा के सहारे तीव्र गति से फैल जाती है और यदि किसी तरह से इसे रोका नहीं गया तो इससे सम्पूर्ण वन क्षेत्र जलकर राख हो जाता है। इस आग से वन्य जीव समुदाय भी चपेट में आ जाते हैं। वन क्षेत्रों में लगने वाली तीसरी तरह की आग को 'मृतिका अग्नि' कहा जाता है। इस आग से मिट्टी में निहित सभी तरह के जैव पदार्थ जल जाते हैं। इससे तात्कालिक क्षति तो होती ही है, भविष्य में भी दीर्घ अवधि तक पेड़ पौधों के उगने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि इस तरह की आग से मिट्टी निर्माण की प्रक्रिया ही भंग हो जाती है और उसे पुनर्स्थापन होने में लम्बी अवधि लग जाती है।

बांध एवं सड़क निर्माण

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बांध एवं सड़क निर्माण में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। बांधों के निर्माण के फलस्वरूप इन बांधों के पीछे जलाशय में विस्तृत वन क्षेत्र जलमग्न होकर सदा के लिए समाप्त हो गये। सन् 1951-71 के मध्य कुल 4 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र जलाशयों में निमग्न हो गए। पहाड़ी क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण के फलस्वरूप पहाड़ी ढलान काटे गये, जिनसे वन क्षेत्र को क्षति पहुंची है। साथ ही साथ सड़क निर्माण के दौरान बीच में पड़ने वाले वृक्ष भी काट दिए गए। उत्तर प्रदेश के चमोली जिले में ही अब तक 1100 किलोमीटर लम्बी सड़क का निर्माण हो चुका है। यही स्थिति अन्य क्षेत्रों में भी है।

वनों का अन्धाधुन्ध कटाव

वन विनाश का एक प्रमुख कारण वृक्षों को अन्धाधुन्ध काटना है। ईंधन अथवा औद्योगिक कार्यों हेतु छोटे-बड़े किसी तरह के भी वृक्ष काट दिए जाते हैं। जब इन वृक्षों को वन से निकाला जाता है तो छोटे-छोटे पौधे एवं झाड़ियां रौंद दी जाती हैं अथवा टूट जाती हैं और इस प्रकार उनका जीवन समाप्त हो जाता है।

वर्तमान समय में अधिकांश वनों की कटाई ठेकेदारों द्वारा कराई जाती है। ये ठेकेदार ठेके में लिए गए वृक्षों की अपेक्षा कई गुना अन्य वृक्ष भी काट डालते हैं और वृक्षों को काटने में किसी प्रकार की सावधानी भी नहीं बरतते, जिससे अन्य वृक्ष भी नष्ट हो जाते हैं।

औद्योगिक उत्पादन

प्रायः अनेक उद्योग वनों से प्राप्त कच्चे पदार्थ पर ही आधारित होते हैं। बड़े उद्योगों में कागज उद्योग मुख्य है। छोटे उद्योगों में प्लाई वुड, बांस, बेंत से बनी सामग्री एवं फर्नीचर निर्माण आदि मुख्य हैं। असम में 52 प्लाई वुड के कारखाने लगाये गए हैं जिससे ओलोंग नामक वृक्ष समाप्त होते जा रहे

हैं। चाय की पेटियों के निर्माण में भी अनेक तरह के वृक्ष समाप्त होते जा रहे हैं। पश्चिमी घाट में कर्नाटक एवं तमिलनाडु के कागज कारखानों द्वारा बांस के जंगल काटकर समाप्त किए जा रहे हैं। अन्य क्षेत्रों में भी बांस के जंगल सीमित होते जा रहे हैं। स्पष्ट है कि एक टन कागज तैयार करने हेतु 1.9 टन बांस की आवश्यकता पड़ती है।

व्यापारिक फसलों का उत्पादन

भारत में वनों का विनाश व्यापारिक फसलों के उत्पादन के कारण भी हो रहा है। जैसे हिमाचल एवं केरल में विस्तृत वन क्षेत्र सेब के बागानों एवं अन्य व्यापारिक फसल क्षेत्रों में बदल दिए गए हैं। सेब को निर्यात करने हेतु पेटी तैयार करने के लिए भी पेड़ काटे जा रहे हैं। सन् 1986 ई. में 1.5 करोड़ पेटियों के निर्माणार्थ 50,000 पेड़ काटे गये थे। इस तरह प्रति हैक्टेयर सेब बागान हेतु 10 हैक्टेयर वन काटे जा रहे हैं। सन् 1940-70 के मध्य केरल में भी 35.00 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र साफ कर नया कृषि क्षेत्र विकसित किया गया है, जिस पर यूक्लिप्टस के वृक्ष एवं अन्य बागाती फसलें पैदा की जा रही हैं।

कीड़ों-दीमकों एवं बीमारियों का प्रकोप

वनों में असंख्य कीड़े तथा दीमक ऐसे होते हैं, जो वृक्षों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि इनको देख पाना कठिन होता है। अतः ये निर्बाध क्षति पहुंचाते हैं। उसी प्रकार वृक्ष विशेष को कई प्रकार की बीमारियां भी लग जाती हैं, जिससे वे असमय में ही सूख जाते हैं। ये कीड़े, दीमक एवं बीमारियां छोटे-छोटे पौधों को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं।

वन विनाश के परिणाम

वनस्पति किसी पारिस्थितिकी तंत्र का आधार है। क्योंकि वनस्पति ही सौर ऊर्जा को ग्रहण करके प्रकाश संश्लेषण द्वारा विविध जैव पदार्थों का निर्माण करती है। इसीलिए इसे पारिस्थितिकी तंत्र में 'उत्पादक' की संज्ञा दी जाती है। वन न सिर्फ उत्पादक हैं, वरन् विभिन्न प्रकार के असंख्य प्राणियों के शरण स्थल भी हैं। प्राथमिक उत्पादक होने के नाते पृथ्वी पर सक्रिय जैव-भू-रसायन चक्रों के नियमन में भी हर प्रकार की वनस्पति विशेषतया वनों की विशेष भूमिका है। वनस्पति एवं वन सर्वाधिक जैव पुंज का निर्माण करते हैं। अतएव वनों के विनष्ट होने से सम्पूर्ण जैव भू-रसायन चक्रों के भंग होने तथा पारिस्थितिकी तंत्र के अस्थिर होने का खतरा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वनों के विनिष्ट होने का प्रभाव सिर्फ उसी स्थान और काल तक सीमित नहीं रहता जहां के वन काट डाले गये हैं, वरन इनका सम्पूर्ण दुनिया के सुदूर भविष्य एवं स्थानों पर भी कुप्रभाव पड़ेगा, क्योंकि जैव-भू-रसायन चक्रों, द्वारा सभी क्षेत्र परस्पर आबद्ध हैं। वन विनाश के निम्नलिखित प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ रहे हैं—

अल्प विकसित देशों में इमारती एवं जलाऊ लकड़ी का अभाव

वृहद पैमाने पर वनों की व्यापारिक कटाई के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों में इमारती एवं जलाऊ लकड़ी का अभाव होता जा रहा है। अल्पविकसित देशों के 70 प्रतिशत लोग घरेलू ईंधन के लिए लकड़ी का ही उपयोग करते हैं। डब्ल्यू.सी.ई.डी. द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार उन अल्प विकसित देशों में जो प्रमुखता जैव पुंज, लकड़ी, चारकोल, गोबर तथा फसलों की डंठलों से प्राप्त ऊर्जा पर भोजन पकाने, घर को गर्म रखने एवं प्रकाश के लिए निर्भर करते हैं, लकड़ी एकत्र करने की गति, लकड़ी प्रदान करने वाली वनस्पति के उगने की गति से तीव्र है। वनों के तीव्र विनाश से इमारती लकड़ी का भी अभाव होता जा रहा है तथा फर्नीचर एवं मकान बनाने हेतु लकड़ी मंहगी होती जा रही है तथा गरीबों के लिए मकान में लकड़ी का प्रयोग करना मुश्किल पड़ता जा रहा है।

वृक्ष जातियों का विनाश

वनों के कटाव से इन विविध वृक्ष जातियों के अवमूल्यन से न सिर्फ विद्यमान कृषि, औषधि एवं औद्योगिक कच्ची सामग्री के विविध स्रोत समाप्त हो रहे हैं, वरन् इन क्षेत्रों में जीन अभियंत्रण द्वारा भावी विकास की सम्भावनाएं विलुप्त होती जा रही हैं। यूनेप के स्टेट आफ दि वर्ल्ड एनवायरनमेंट 1987 के अनुसार पौधों की 265000 वृक्ष जातियों में से वनों के कटाव के कारण 60000 वृक्ष जातियां सदा के लिए विलुप्त हो गई हैं। यदि किसी वन क्षेत्र में 10 प्रतिशत का ह्रास होता है तो इनमें रहने वाली वृक्ष जातियों में से 50 प्रतिशत विलुप्त हो जाती हैं।

भूमि अपरदन में वृद्धि तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति का ह्रास

वन आवरण समाप्त होने से मिट्टी का तीव्र गति से अपरदन होता है। किसी भी वनीय भूमि की 6 इंच गहरी मिट्टी के अपरदित होने में लगभग 174200 वर्ष लग जाते हैं। किन्तु यदि भूमि बिना वन आवरण की होती है, तो मात्र 17 वर्षों में ही 6 इंच गहरी भूमि अपरदित हो जाती है। इसका कारण यह है कि वनस्पति आवरण की अनुपस्थिति से वर्षा का जल बिना अवरोध के सीधा भूमि पर गिरता है। साथ ही साथ इसके अतिरिक्त पौधों की अनुपस्थिति में मृदा को बांधकर रखने का कार्य करने वाली जड़ें भी प्राप्त नहीं हो पातीं। फलतः मिट्टी अपरदन सुगमतापूर्वक एवं अधिक मात्रा में होता है। विशेषज्ञों

के अनुसार प्रतिवर्ष 6 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बाढ़ के जल के साथ बहकर समुद्र में चली जाती है।

जलाभाव एवं जल प्रदूषण में वृद्धि

भूमि पर पेड़ों की झड़ी पत्तियों एवं वनस्पति आवरण के अभाव में वर्षा का पानी रिस-रिसकर मन्द गति से प्रवाहित न होकर शीघ्र ही बह जाता है। अतएव वर्षा वाले पतझड़ वन एवं तबाना प्रदेश जीमोव में शुष्क ऋतु में नदियों का प्रवाह अत्यंत क्षीण हो जाता है। इससे जलाभाव तथा जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

बाढ़ में वृद्धि

बाढ़ संकट का एक मुख्य उत्तरदायी कारक वन विनाश है। वनस्पति आवरण विहीन भूमि जीवांश की कमी होने के फलस्वरूप वर्षा की तेज धार सहन नहीं कर पाती है न ही जल सोख पाती है। फलतः मिट्टी वर्षा के पानी के साथ कटकर बह जाती है एवं अन्दर से कड़ी खुली चट्टान उभर आती है। मिट्टी के कटकर बहने से नदियों में अवसाद की वृद्धि होती जाती है, जिससे नदी तल उथला हो जाता है और जल बाढ़ के रूप में फैल जाता है।

सूखा एवं मरुस्थलीकरण में वृद्धि

सूखा एवं मरुस्थलीकरण का एक मुख्य कारण वन विनाश भी है। वन विनाश के कारण भूमिगत जल के स्तर में अत्यधिक कमी हो जाती है। भारत के पश्चिमी घाट क्षेत्रों में वन विनाश के कारण ही मरुस्थलीकरण की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

भू-स्खलन में वृद्धि

वन विनाश के चलते पर्वतीय क्षेत्रों में में भू-स्खलन में भी वृद्धि हुई है। वनस्पतियों के नष्ट होने के कारण पर्वतीय ढाल भू-पिंड को अपने साथ बनाए रखने में असमर्थ हो जाते हैं। फलस्वरूप भू-स्खलन की सम्भावना बढ़ जाती है। भारत नेपाल सीमा के तवा घाट में 1977 एवं 1979 में हिमाचल प्रदेश की रोहड़ू तहसील में 1970 में और उत्तर प्रदेश के चमोली में 1977 तथा 1986 में भयंकर भू-स्खलन हुए हैं, जिनमें अपार धन-जन की हानि हुई है। इसके अतिरिक्त हिमालय के अन्य क्षेत्रों में भी स्खलन हुए हैं।

जलवायु में परिवर्तन

वन परिस्थितिकी तंत्रों को संचालित करने वाले जैव भू-रासायनिक चक्रों के नियामक होते हैं। इनमें जल चक्र एवं कार्बन चक्र मुख्य हैं। वन विनाश के कारण कार्बन चक्र में गड़बड़ी पैदा हो जाती है और यही जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण बनता है। वनों के क्षेत्रफल में निरंतर ह्रास एवं वायुमंडल में कार्बन डाइ आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड आदि गैसों की वृद्धि से कार्बन चक्र की क्रियाशीलता बढ़ रही है। यूनेस के एस. डब्ल्यू. ई. 1987 के अनुसार प्रतिवर्ष वायु मण्डल में 5 हजार टन कार्बन कारखानों एवं अन्य स्रोतों से उड़ेला जा रहा है। वन एवं मिट्टी से 1 से 2 अरब टन तक कार्बन वायुमंडल में पहुंच रहा है, जिसका 80 प्रतिशत उष्ण कटिबन्धीय वनों के विनष्ट होने के कारण उत्पन्न हो रहा है।

वन विनाश के उपर्युक्त दुष्परिणामों को देखते हुए स्काट-लैण्ड के विज्ञान लेखक राबर्ट चेम्बर्स ने सत्य ही लिखा है कि "वन नष्ट होते हैं तो जल नष्ट होता है, मत्स्य और शिकार नष्ट होते हैं, फसलें नष्ट होती हैं, पशु नष्ट होते हैं, उर्वरता विदा ले जाती है और तब ये पुराने प्रेत एक के पीछे एक प्रकट होने लगते हैं—बाढ़, सूखा, आग, अकाल और महामारी।"

वन विनाश रोकने के उपाय

वनों का विनाश, वन प्रबन्ध, वन रक्षण एवं वन संरक्षण के माध्यम से रोका जा सकता है। विश्वव्यापी व्यापारिक वन दोहन के इस युग में हम धरती की घटती हरियाली का पुनर्स्थापन वन प्रबन्ध एवं वन संरक्षण द्वारा ही कर सकते हैं।

वन प्रबन्ध

वन प्रबन्ध की दो मुख्य विचार धाराएं हैं—प्रथम विचारधारा के वन विशेषज्ञों का मत है कि वनों का प्रबन्ध रेशा फसल के रूप में इस तरह से करना चाहिए जिस तरह हम खाद्य फसलों की खेती करते हैं। कारण यह है कि जनसंख्या वृद्धि के साथ ही साथ प्रति व्यक्ति रेशा उपभोग में भी वृद्धि होगी और उसी के अनुसार वन उत्पादों की मांग में भी वृद्धि होगी। इसलिए इनकी पूर्ति हेतु वृक्षों एवं अन्य रेशायुक्त पौधों की कृषि ही एक मात्र समाधान है। दूसरी विचारधारा के विशेषज्ञों का मत है कि वनों के साथ फसलों के समान व्यवहार करना उचित नहीं है। इसका कारण यह है कि वनों की उपयोगिता मनोरंजन स्थलों, वन्य जीव के आवास-निवास आदि अन्य उपयोगी कार्यों में भी है। यही नहीं वृक्षों के फार्म एवं प्राकृतिक बहुउपयोगी वन दो भिन्न पारिस्थितिकी तंत्र हैं।

इस प्रकार वन प्रबन्ध के अनेक मार्ग हैं जिनमें एक यह है कि वनों को प्राकृतिक अवस्था में जैसा का तैसा ही छोड़ दिया जाये, पर यह व्यावहारिक नहीं होगा। क्योंकि वनों का उपयोग विभिन्न कार्यों हेतु करने के लिए वन पारिस्थितिकी तंत्र में कुछ अंशों तक परिवर्तन करने ही होंगे।

प्राध्यापक, भूगोल विभाग
महाविद्यालय दुबेछपरा
बलिया (उ. प्र.)-277205

ग्रामीण विकास में सामाजिक वानिकी की भूमिका

डॉ. साहब दीन मौर्य
श्रीमती गायत्री देवी

वन जहां एक ओर स्वस्थ पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करते हैं वहीं दूसरी ओर वनों पर आधारित आदिवासियों तथा ग्रामीण जनसंख्या को सुदृढ़ आर्थिक आधार भी प्रस्तुत करते हैं। पिछली तीन-चार दशाब्दियों में विभिन्न आर्थिक उद्देश्यों से भारत में वनों का अत्याधिक ह्रास हुआ है। इस निर्वनीकरण ने पर्यावरण-प्रदूषण के रूप में गंभीर खतरा उत्पन्न कर दिया है और साथ ही अकथनीय आर्थिक एवं सामाजिक क्षति पहुंचायी है। भारत सरकार ने देश की वन-सम्पदा को पुनः प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से 'सामाजिक वानिकी' की महत्वाकांक्षी योजना को क्रियान्वित किया है। इस योजना के संचालन हेतु संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, स्वीडन, ब्रिटेन तथा विश्व बैंक से भी सहायता प्राप्त हो रही है।

निर्यनीकरण के प्रभाव

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय (1947) देश की 40 प्रतिशत भूमि पर वनों का विस्तार था किन्तु अब यह प्रतिशत घट कर 20 से भी कम हो गया है। वनों के ह्रास से देश के ग्राम्यांचलों में जहां एक ओर पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर भूमि क्षरण, बाढ़, सूखा आदि अप्रत्यक्ष कारणों से कृषि उत्पादन पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। सबसे अधिक वे ग्रामीण क्षेत्र प्रभावित हुए हैं जहां की अधिकांश जनसंख्या विविध रूपों में अपने जीविका हेतु वन-वृक्षों तथा वनोत्पादनों पर आधारित रही है। ग्रामीणों एवं वनवासियों को जंगलों से जलाने के लिये लकड़ी, जानवरों के लिये चारा, मकान तथा झोपड़ियों के लिये बांस तथा लट्ठे और कृषि हेतु जैविक खादें प्राप्त होती थीं किन्तु वनों के ह्रास से इन वस्तुओं की दुर्लभता बढ़ती गयी है जिसके फलस्वरूप उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में निरन्तर गिरावट होती रही है।

स्वतंत्र भारत में अनेक विकास योजनाओं का आरम्भ हुआ। खाद्य-समस्या के हल के लिये तीसरी पंचवर्षीय योजना में चलायी गयी हरित क्रांति के अंतर्गत पहले से परती पड़ी भूमि तथा वनों को साफ करके प्राप्त भूमि को कृषि हेतु प्रयोग पर बल दिया गया। इसके साथ ही जल विद्युत तथा सिंचाई सुविधा के लिये अनेक बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं को भी क्रियान्वित किया गया जिसके लिये हजारों एकड़ भूमि से वन वृक्षों को साफ कर दिया गया। निर्वनीकरण से मृदा-अपरदन और बाढ़ की आवृत्ति एवं गति में वृद्धि तथा कृषि भूमि और उसकी उर्वरता में उल्लेखनीय कमी हुई है। वनों के ह्रास से वर्षा की मात्रा में कमी तथा भूमिगत जल के स्तर में भी गिरावट का अनुभव किया जा रहा है। इस प्रकार वनों के ह्रास से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्राकृतिक और मानवीय विपदाओं के क्षेत्र में वृद्धि हुई है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1952 में भारत सरकार ने वन नीति का निर्धारण किया जिसमें स्थानीय जनता की संतुष्टि पर विशेष ध्यान दिया गया किन्तु इस नीति से न तो भारत के निर्वनीकृत भूमि पर वन-सम्पदा का पुनर्स्थापन किया जा सका और न ग्रामीण जनसंख्या की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही की जा सकी। राष्ट्रीय कृषि आयोग के सुझाव पर भारत में सर्वप्रथम 1978 में 'सामाजिक वानिकी' कार्यक्रम का आरम्भ किया गया। इसके पहले के समस्त कार्यक्रम प्रायः सरकारी भूमि तक ही सीमित होते थे किन्तु इस कार्यक्रम के आरम्भ होने से जन साधारण की भूमि पर भी वृक्षारोपण कार्य में विस्तार संभव हो सका।

सामाजिक वानिकी के उद्देश्य

सामाजिक वानिकी पूर्व वानिकी कार्यक्रमों से बिल्कुल भिन्न है क्योंकि पहले वानिकी कार्यक्रमों में स्थानीय जनता की सहभागिता पर बल नहीं दिया गया था। यह सत्य है कि बिना स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त किये किसी भी वानिकी कार्यक्रमों को सफल बनाना सुगम नहीं है। इसके लिये स्थानीय जनता का सक्रिय सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। स्थानीय जनता की सहभागिता होने पर वह वृक्षारोपण से लेकर उनकी सुरक्षा एवं विकास में पूरी रुचि लेती है। सहभागिता के अभाव में स्थानीय लोग ही चोरी-छिपे अपने जानवरों से रोपाई किये गये पौधों को चरा लेते हैं अथवा उन्हें अन्य रूपों में क्षति पहुंचाते हैं। इन्हीं तथ्यों एवं अनुभवों के आधार पर सामाजिक वानिकी कार्यक्रम अपनाया गया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न सुविधायें प्रदान करके सामुदायिक भूमि पर समुदाय द्वारा ही वृक्षारोपण कराने की योजना है। इस योजना के अन्तर्गत लगाये गये वृक्षों से प्राप्त लाभ भी समुदाय को ही प्राप्त होंगे।

राष्ट्रीय कृषि आयोग, भारत सरकार (1976) के अनुसार सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत (1) कृषि वानिकी, (2) प्रसार वानिकी, (3) हरित एवं निम्न कोटि के वनों का प्रत्यारोपण और (4) मनोरंजन वानिकी को सम्मिलित किया जा सकता है। द्वितीय वानिकी सम्मेलन (1980) में यह तय किया गया कि कृषि भूमि पर, बेकार पड़ी सामुदायिक भूमि पर, सड़क, नहर और रेलवे के किनारों या इसी प्रकार की अन्य समान भूमियों पर वृक्षारोपण के उद्देश्य से सामाजिक वानिकी कार्यक्रम को सम्पूर्ण देश में प्रमुखता प्रदान की जानी चाहिए। वह भूमि व्यक्तिगत अथवा सामुदायिक तथा पट्टी में अथवा ब्लाक किसी भी रूप में हो सकती है।

इस प्रकार सामाजिक वानिकी से अपेक्षित है कि मानव-बस्तियों में वृक्ष तथा वन-सम्पदा के सृजन से स्थानीय ग्रामीण जनता की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव हो सकेगी और साथ ही यह मृदा अपरदन एवं पर्यावरण-प्रदूषण को रोकने में भी सहायक सिद्ध होगी। सामाजिक वानिकी के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं:

सामाजिकी वानिकी का प्राथमिक लक्ष्य है ग्रामीण क्षेत्र में ईंधन की लकड़ी का विकास करना जिससे ग्रामवासियों के लिये ईंधन की वर्तमान समस्या का समाधान किया जा सके और इसके बदले घरेलू ईंधन के लिये परम्परागत रूप से प्रयुक्त होने वाले गोबर को बचाकर उसका प्रयोग खाद के रूप में करके कृषि उत्पादन में वृद्धि की जा सके।

ग्रामवासियों के जानवरों के लिये हरे चारे की आपूर्ति करना भी सामाजिक वानिकी कार्यक्रम का एक उद्देश्य है। वृक्षों की हरी पत्तियों तथा छोटी-छोटी टहनियों का उपयोग पशुओं के चारे के रूप में किया जा सकेगा। इससे कृषि में प्रयुक्त होने वाले तथा दुधारू पशुओं के विकास द्वारा ग्रामीण जनता की आय में वृद्धि हो सकेगी।

सामाजिकी वानिकी का तीसरा उद्देश्य ग्रामीण मकानों के निर्माण हेतु आवश्यक निर्माण सामग्रियों—खम्भों, लकड़ियों, पत्तियों आदि को उपलब्ध कराना है। सर्वविदित है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब जनता के लिये मकान निर्माण हेतु लकड़ियों तथा बांस की स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं है। अतः इन लकड़ियों की प्राप्ति के लिये अधिक मात्रा में वृक्षारोपण अनिवार्य हो गया है।

जल और मृदा प्रणाली के स्थायित्व के लिये वृक्षों तथा वनों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। बाढ़ पर नियंत्रण करने तथा मृदा अपरदन से प्रभावित भूमि पर वृक्षारोपण द्वारा भूमि कटाव को रोकना भी सामाजिक वानिकी का एक मुख्य उद्देश्य है। इसके साथ ही वृक्षारोपण द्वारा भूमिगत जलस्तर के स्थायित्व में भी सफलता मिलेगी।

अति निर्वनीकरण के कारण रेगिस्तान के प्रसार को पुनर्वृक्षारोपण द्वारा रोकना तथा खेत की फसल को तेज हवाओं के प्रकोप से बचाना भी सामाजिक वानिकी का एक लक्ष्य है।

ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षारोपण द्वारा मनोरंजन की सुविधायें प्रदान करना भी इसके उद्देश्यों में से एक है।

सामाजिक वानिकी द्वारा आर्थिक विकास

गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले अधिकांश लोग गांवों में निवास करते हैं। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोगी वृक्षों को लगाने से उनके जीवन-स्तर में सुधार लाया जा सकता है। वन तथा पेड़-पौधे देहात में रहने वाली गरीब जनता की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार हैं। आदिवासियों या वनवासियों की तो केवल अर्थव्यवस्था ही नहीं बल्कि उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था भी वनों से ही सम्बद्ध होती है।

गांव की बंजर और परती भूमि पर, नहरों, सड़कों, जलाशयों आदि के किनारे की बेकार पड़ी भूमि पर उपयोगी वृक्षों के लगाने से अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा। केन्द्रीय सरकार ने 'वृक्ष पट्टा योजना' चलायी है जिसके अन्तर्गत गांव के निर्बल वर्ग के लोगों, लघु एवं सीमान्त कृषकों तथा भूतपूर्व सैनिकों को वृक्षारोपण हेतु सार्वजनिक भूमि का अस्थायी पट्टा दिया जाता है। इस भूमि पर वृक्ष लगाने वाले उससे फल, सूखी लकड़ी, पत्ते आदि प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं किन्तु भूमि का स्वामित्व पूर्ववत रहता है।

कुछ विशेष प्रजाति के पौधे जिनके रोपण के पश्चात शीघ्र ही लाभ प्राप्त होने लगते हैं, सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत उपलब्ध कराये जा रहे हैं। वन विभाग द्वारा ऐसे पौधों को निःशुल्क अथवा रियायती मूल्यों पर उपलब्ध कराये जाते हैं। देश के अधिकांश भागों में विशेष रूप से गुजरात, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु एवं कर्नाटक राज्यों में 7-8 वर्ष में तैयार होने वाले यूकलिप्टस के पौधों का सर्वाधिक रोपण किया गया है।

अब प्रश्न उठता है कि सामाजिक वानिकी किसके लिये है—गरीब ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अथवा नगरीय तथा औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये? विश्व बैंक ने भी मध्यावधि सर्वेक्षण के उपरान्त स्वीकार किया है कि सामाजिक वानिकी की योजना ऐसे भूमिहीन गरीब लोगों, जिनके पास जीविका के कोई साधन नहीं

हैं, ईंधन और चारे की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रही है।

सामाजिक वानिकी योजना को तभी सफल माना जा सकता है जब वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर रही हो। इसकी सफलता के लिये जन सहयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और यह तभी सम्भव है जब ग्रामीण जन समूह को यह विश्वास हो जाये कि सार्वजनिक भूमि पर उनके द्वारा लगाये गये वृक्षों का लाभ उन्हें ही मिलेगा। इसके लिये जन जागरण और इस प्रकार का विश्वास दिलाने की विशेष आवश्यकता है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों की सार्वजनिक भूमि, सड़कों एवं नहरों के किनारे की बेकार पड़ी भूमि पर उन प्रजातियों के रोपण को प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिए जिनके तैयार होने पर ग्रामवासियों को उनसे फल, चारे के लिये हरी पत्तियां तथा मकानों के लिये लकड़ियां और ईंधन के लिये छोटी लकड़ियां प्राप्त हो सकें। फल प्रदान करने वाले वृक्षों में आम, जामुन, महुआ, गूलर, पपीता, कटहल, अमरूद आदि प्रमुख हैं। नीम, बबूल, शीशम, देवदार, सागौन आदि से घरेलू तथा इमारती लकड़ी प्राप्त होती हैं। बबूल, बेर या कई अन्य कटीलें वृक्षों को ऊसर भूमि के सुधार के लिये भी प्रयोग किया जाता है और साथ ही इनसे बकरियों के लिये चारा और कृषि उपयोगी लकड़ियां भी प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार अन्यान्य जनोपयोगी प्रजातियां हैं जिनके रोपण से जनसाधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि सामाजिक वानिकी योजना के उद्देश्य निश्चय ही विकासोन्मुखी तथा अत्यन्त उपयोगी हैं। अतः समय की पुकार है कि इसका क्रियान्वयन सही ढंग से किया जाना चाहिए जिससे इसका पूर्ण लाभ उन भूमिहीन गरीब ग्रामवासियों को मिल सके जिनके लिये ही इस कार्यक्रम को चलाया गया है। अतः सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत उन पौधों के रोपण को प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए जिनसे ग्रामवासियों को जलाने के लिये लकड़ी, चारे के लिये हरी पत्तियां, उपयोगी फल तथा भवन एवं कृषि यंत्रों के लिये उपयोगी लकड़ियां मिलती रहें। सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों की सफलता से गांवों में रोजगार के नये अवसर उपलब्ध होंगे और ग्रामीण बेरोजगारी में कमी आयेगी। इस प्रकार ग्रामीण सम्पन्नता बढ़ेगी और देहात का नगरों पर दबाव भी धीरे-धीरे घटने लगेगा।

79, छोटा बघाड़ा, इलाहाबाद-2

ढलाउराम का सपना साकार हुआ

स. कु. बिस्वाल

जिला-बिलासपुर, म. प्र., विकासखंड-अकलतरा का एक छोटा-सा गांव, ग्राम-परसाहीनाला। ग्राम के 80 प्रतिशत ग्रामीण हरिजन और अदिवासी हैं। ग्राम के एक 45 वर्षीय आदिवासी श्री ढलाउराम, जिसके नाम पर मकान को छोड़कर कृषि के लिए कुछ भी जमीन नहीं है। श्री ढलाउराम के 3 लड़के हैं, जिन्हें गरीबी के कारण 4 थी कक्षा के बाद आगे नहीं पढ़ा सके। पहले श्री ढलाउराम के तीनों बच्चे मजदूरी के लिए जाते थे। श्री ढलाउराम ने ग्राम के शिक्षित लोगों के सहयोग से भारतीय स्टेट बैंक अकलतरा से जून, 1984 में गांव में किराना दुकान खोलने के लिए 4000 रुपये लिये। उक्त दुकान से उन्हें प्रतिमाह 600 रुपये का लाभ मिला, उसी रुपये से उन्होंने अपने युवा बेरोजगार बच्चों को धान-चावल का व्यापार करवा दिया। अब उनके पास दो सिलाई मशीन भी हैं, जिससे घर बैठे 200 रुपये प्रतिमाह कमा लेते हैं। वह गरीब ढलाउराम अब गरीब नहीं है। उनके परिवार में अब 8 सदस्य हैं, अब उनके लड़के खुद का व्यापार करते हैं और प्रतिमाह कुछ न कुछ रुपये बैंक में जमा भी करते हैं।

श्री ढलाउराम का कहना है कि अब वह खुद मेहनत कर रहे हैं और पहले से अच्छे हैं। वह यह भी कहते हैं कि जिसका परिवार बड़ा हो वह अपने बच्चों की समस्याओं का समाधान नहीं कर पाएगा। आज के युग में जिसका परिवार छोटा है उसके जीवन में खुशी ही खुशी है। □

वानिकी की विसंगतियां

शुकदेव प्रसाद

आजादी के बाद देश में वनों के विकास के बारे में सरकारी स्तर पर एक चेतना जागी और साल भर बाद 'अधिक वृक्ष लगाओ' जैसा एक सरकारी अभियान वजूद में आया। 1950 में केन्द्रीय सरकार में कृषि मंत्री श्री के. एम. मुंशी ने इस समूचे अभियान को एक नई संज्ञा दी—'वन महोत्सव' और औपचारिक रूप से देश में वन महोत्सव की परम्परा तब से अब तक चली आ रही है, जिसका औपचारिक निर्वाह प्रतिवर्ष किया जाता है। श्री के. एम. मुंशी सांस्कृतिक अभिरुचि के धनी और भारतीय संस्कृति के विश्रुत विद्वान और पोषक थे, अतः उन्होंने इसे राष्ट्रीय विकास के एक अंग के रूप में स्वीकारे जाने और उसके अनुपालन पर जोर देना चाहा था जिससे वन रोपण ने 'महोत्सव' का रूप लिया। उनकी मान्यता थी कि अधिक से अधिक संख्या में पौध-रोपण हो जिससे कि ह्रास हुए वनों का अभाव पूरा किया जा सके और देश का पर्यावरण संतुलित रूप से विकसित हो।

पं. जवाहरलाल नेहरू की भी अपनी मान्यता थी—"लापरवाह हाथों द्वारा किसी अच्छे पेड़ को, जिसे बढ़कर बड़ा होने में एक अरसा लगा और जो पूरी शान से खड़ा हुआ है, काटे जाते देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। इस जंगलीपन की रोकथाम के लिए हमारी जनता में तीव्र भावना होनी चाहिए। यदि ऐसा करना नितांत अपरिहार्य हो जाये तो ऐसी प्रथा बन जानी चाहिए कि काटे गए एक पेड़ की जगह तुरंत दो नए पेड़ लगा दिए जायें।"

पर खेद है कि ऐसी प्रथा बन नहीं पायी। संसद द्वारा 12 मई 1952 को राष्ट्रीय वन नीति बन जाने (जिसके अनुसार देश के कुल क्षेत्र का 33.3 प्रतिशत वनाच्छादित रहना चाहिए) के बावजूद भी वन का शोषण जारी रहा और आज भी वैसी ही दुःखद स्थिति है और नए वन रोपण की तो और भी विसंगतियां हैं।

वास्तव में वनों के वरदान को हम समझने की चेष्टा ही नहीं कर रहे हैं। वनों के वरदान इस नारे में सन्निहित हैं—

क्या हैं जंगल के उपकार?
मिट्टी, पानी और बयार।

वृक्षों की जड़ें धरती को मजबूती से पकड़े रहती हैं, जिससे मिट्टी का कटाव, बहाव रुकता है, अपनी जड़ों में वे पानी संचित रखते हैं, सघन वृक्षावली के पास घने बादल अच्छी वर्षा करते हैं और वृक्ष पर्यावरण का शोधन तो करते ही हैं।

पर ये लाभ आज के स्वार्थ लोलुप मानव के प्रत्यक्ष लाभ के नहीं हैं। उसे तो सजावटी सामान बनाने की लकड़ी या फिर व्यावहारिक लाभ के वनोत्पाद में लाभ नजर आता है, जिससे सीधे मुद्रा मिलती है, अतः बेखटके वनों का कटाव जारी है, पर्यावरणीय दुष्प्रभाव की उसे कोई चिंता नहीं है।

अब चूंकि पर्यावरण की चेतना देश में ही नहीं, सारी दुनियां में व्याप्त हो रही है, अतः हमारी सरकार भी इस कार्यक्रम में रुचि ले रही है और संरक्षण की दिशा में राष्ट्रीय स्तर के प्रयास आरंभ किए गए हैं। वन रोपण को इधर नया नाम दिया गया है—'सामाजिक वानिकी' जिसका उद्देश्य गांवों की बेकार पड़ी भूमि पर वन लगाकर ईंधन, चारापत्ती व कुटीर उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराना है।

सामाजिक वानिकी की विसंगति तो देखिए? वानिकी के नाम पर सरकारी उपक्रम के अंतर्गत रेल पटरियों के किनारे या राजमार्गों के दोनों ओर पौधे रोपे जाते हैं। मगर कौन-से पौधे? वे पौधे नहीं, जो आगे चलकर घनी, शीतल छाया दें, ईंधन और सजावटी लकड़ी दें, बल्कि यूकिलप्टस, पापुलर या चीड़ के वृक्ष जो तात्कालिक और व्यापारिक लाभ दे सकते हैं, जिससे व्यापारिक उत्पादन के जरिये विदेशी मुद्रा तो अर्जित की जा सकती है पर वे पर्यावरणीय मुद्दों से कोई सरोकार नहीं रखते। न तो ये वृक्ष छाया दे सकते हैं, न ईंधन या साज-सामान की लकड़ी और न ही धरती को मजबूती प्रदान कर भू-क्षरण के रुकाव में अपनी कोई भूमिका अदा कर सकते हैं।

विदेशी धरती से आया पौधा यूकिलप्टस तो सारे भारत में छा गया। यूकिलप्टस वैसे भी विवादग्रस्त पेड़ है। वैज्ञानिकों की धारणा है यह जमीन से अधिक मात्रा में पानी, खनिज खींचता है और उतनी ही तेजी से वाष्पोत्सर्जन करता है, तात्पर्य यह कि धरती के नीचे दबी जल संपदा के दोहन का पर्याय है यह विदेशी पेड़।

एक बार भारत की धरती में इसके पांव क्या पड़े, फिर तो यह फैलता ही गया। यूकेलिप्टस का इस्तेमाल कागज और रेयान निर्माण में होता है और इसकी लगातार बढ़ती मांग सीधे मुद्रा खींच कर लाती है, इसी नाते इसके रोपण पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। अब तो इसकी बढ़ी मांगों की आपूर्ति के लिए कई कम्पनियां इसकी भरपूर और बड़े पैमाने पर खेती करने लगी हैं। इस मामले में हमारी राज्य सरकारें भी पीछे नहीं हैं। कर्नाटक में एक रेयान मिल के साथ मिलकर उसकी आपूर्ति के लिए सरकार ने हजारों हैक्टेयर भूमि में यूकेलिप्टस रोपे हैं।

पर्यावरण में संतुलन के लिए वांछनीय वृक्षों के रोपण एवं सम्वर्धन को नजरंदाज करके यूकेलिप्टस, चीड़, चाय, कहवा, आड़ू या कि रबड़ के पेड़ों के लगाये जाने के पीछे सिर्फ यही हकीकत है कि ये व्यापारिक महत्व के हैं और तत्काल इनसे मुद्रा अर्जित की जा सकती है। लेकिन पारिस्थितिकीय सिद्धान्त यही कहते हैं कि वनों की अहम् भूमिका मिट्टी और पानी का स्तर बनाए रखने में है, कमाऊ पौधों के रोपण से हम मिट्टी और पानी दो अनमोल धरोहरों की क्षति कर भयानक कीमत चुका रहे हैं। पारिस्थितिकीय ढांचों में यह बात भी आ रही है कि एक ही तरह की फसल लेने से जमीन की उर्वरा शक्ति नष्ट होती जाती है, अतः हमारी कृषि में फसल चक्रों का चलन है। अतः एक ही तरह की पादप प्रजातियों के भारी संख्या में उगाये जाते रहने से एक समूचा पारिस्थितिक ढांचा लड़खड़ा जायेगा और अपने ही रचे कुचक्र में हम आ फंसेंगे, जहां से निस्तार पाना सरल नहीं है। अतः बेहतर यही होगा कि एकल प्रजाति वृक्षारोपण की बजाय मिश्रित प्रजातियों के रोपण पर जोर दिया जाये ताकि पारिस्थितिक संतुलन कायम रह सके।

वनों को तबाह करने में कई विकास परियोजनाओं का भी गहरा हाथ है। मसलन हम खनन का ही उदाहरण लें, जिसने अधिकांश वन क्षेत्रों को उजाड़ कर वहां का समूचा पारितंत्र नष्ट कर दिया है। इसी तरह गंध मर्दन पर्वत क्षेत्र (संबलपुर, उड़ीसा) को नष्ट किया है, भारत अल्युमीनियम कम्पनी की खनन परियोजना ने। वास्तव में खनन क्षेत्र तो इस प्रक्रिया में तबाह होता ही है, खनिजों के परिवहन के लिए साधनों, सड़कों के विकास में भी पारितंत्र को क्षति पहुंचती है। यद्यपि केन्द्रीय वन संरक्षण अधिनियम (1980) के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि वन भूमि का दूसरे प्रयोजन के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता, जब तक कि इसके लिए केन्द्र सरकार की अनुमति न प्राप्त कर ली जाये। इससे कम से कम राज्य सरकारों पर कुछ अंकुश तो लगा पर यह अधिनियम भी उतना असरदार नहीं है और फिर राज्य सरकारें किसी न किसी रूप में केन्द्र से अनुमति प्राप्त कर ही लेती हैं। इसके प्रमाण के लिए एक ही उदाहरण काफी होगा। बोधघाट परियोजना (म. प्र.) के अन्तर्गत 50-60 हैक्टेयर साल वन देखते ही देखते धराशायी हो गये। सड़कों और इमारतों के निर्माण के लिए इतनी बड़ी वन संपदा की कुर्बानी दे दी गई, जिसकी भरपाई संभव नहीं और नियोजकों का दिमागी दिवालियापन तो देखिए, बोधघाट परियोजना में विनष्ट हुए साल वन के बदले वृक्षारोपण के लिए ऐसा स्थान चुना गया जहां किसी कीमत पर वन विकास संभव ही नहीं है। पर्यावरणीय सिद्धान्तों के नितान्त प्रतिकूल यह प्रावधान इन परियोजनाओं के नियोजकों के विवेक का द्योतक है। जाने, कब पर्यावरण संरक्षण की समझ हममें व्यापेगी और कब जाकर रुकेगा धरती के शोषण का सिलसिला?

निदेशक, विज्ञान वैचारिकी अकादमी
34 एलनगंज इलाहाबाद-211002

वन संरक्षण की आवश्यकता

एल. आर. शर्मा

विश्व में किसी भी देश का भूभाग यदि एक तिहाई सघन वनों से ढका हो तो अंतर्राष्ट्रीय मानकों में इसे सुखद स्थिति कहा जा सकता है। इस संबंध में भारत की स्थिति इतनी अच्छी नहीं है। देश का केवल 10 से 15 प्रतिशत भाग ही वनों से घिरा हुआ है। हमने इमारती लकड़ी, चारे, ईंधन और कृषि भूमि की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों का कटाव निरन्तर किया है। एक अनुमान के अनुसार देश में प्रतिवर्ष 10-15 लाख हैक्टेयर वनों का सफाया हुआ है।

वनों के विनाश के तात्कालिक और दीर्घकालीन दुष्परिणामों पर कम ही लोगों की नजर जाती है। वनों पर आधारित समाज उजड़ रहे हैं। वनों के साथ-साथ बहुत बड़े पैमाने पर जैविक विविधता लुप्त होती जा रही है। मौसम का संतुलन बिगड़ रहा है और गर्मी बढ़ रही है। देहात के लोग गरीबी और अकाल के शिकार हो रहे हैं।

हिमालय क्षेत्र में मौसम असंतुलित होने लगा है। बर्फ की मोटाई कम होने लगी है। प्राकृतिक झरने सूखते जा रहे हैं। रेगिस्तान का फैलाव बढ़ता जा रहा है। वनों की व्यापारिक कटाई, खनन, उद्योग, सड़कें, पर्यटन, प्रदूषण, पुनर्वास और वनवासियों को बेदखल करने वाली योजनाओं ने भी वनों को उजाड़ा है। पशुओं के लिए चारा और मानव के लिए ईंधन की कमी का सामना देश के हर भाग को करना पड़ रहा है। गांव में पीने के पानी का संकट नजर आ रहा है। राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड के मुताबिक वृक्षारोपण कार्यक्रम के तहत बिगड़ती हुई स्थिति को रोका नहीं गया तो आने वाले वर्षों में गंगा-यमुना का उपजाऊ मैदान भी रेगिस्तान में परिवर्तित हो सकता है। पर्यावरण विशेषज्ञों का कहना है कि देश में हाल के वर्षों में जो क्षेत्र हरे-भरे थे और उपजाऊ थे उनमें रेगिस्तान जैसी परिस्थितियां पैदा होने लगी हैं। मानसून के दिनों में भूमि कटाव होने की वजह से और भूमि की पानी सोखने की क्षमता कम होने से शुष्क महीनों में सूखा पड़ना निरंतर प्रक्रिया बन गई है।

इधर, ईंधन और चारे की कमी एक गंभीर संकट का रूप धारण कर रही है। हमारे देश में लगभग 13 करोड़ टन चारे की आवश्यकता होती है परन्तु केवल चार करोड़ ईंधन और चारे की आपूर्ति हो पाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए लगभग साढ़े सात करोड़ टन गोबर और कृषि अवशेषों को ईंधन के रूप में जलाया जा रहा है। अनेक प्रकार की वनस्पतियों के समाप्त हो जाने की आशंका भी उत्पन्न हो गई है। वन कटाव से होने वाले दुष्परिणामों से देश का कोई भाग बचा हुआ नजर नहीं आता। हिमाचल प्रदेश और तमिलनाडु जैसे राज्यों में जहां पर कभी अकाल का नाम भी नहीं सुना गया था, प्रतिवर्ष अकाल की चपेट में आने लगे हैं। हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और जम्मू-कश्मीर तथा अन्य स्थानों पर पर्वतों की ढलानों से हरियाली समाप्त होती जा रही है। आंध्र प्रदेश में मूसलाधार बारिश होने लगती है, राजस्थान की पहले से ही दुर्बल मिट्टी की उर्वरकता समाप्त होती जा रही है। उधर असम, उड़ीसा और बिहार कभी सूखे का सामना करते हैं तो कभी भयंकर बाढ़ का।

वन विनाश के खिलाफ कई देशों में वनवासियों ने भी आवाज उठाई है। मलेशिया में मारावाक, अमेंजोनिया, थाईलैंड और फिलीपीन्स से उठी आवाजें अब केवल वहीं तक ही सीमित नहीं रह गई हैं बल्कि इन्होंने सारे विश्व के जनमत को झकझोर दिया है।

भारत ही विश्व का एक ऐसा देश है जिसे वन संस्कृति विरासत में मिली है। भारतीय संस्कृति ऐसी संस्कृति है जो पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों को एक बृहद परिवार का सदस्य मानती आई है। भारत में भी वन विनाश कम नहीं हुआ है लेकिन भारत ने अपनी नयी रणनीति में परिस्थितिकीय संतुलन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। हाल के वर्षों में 'चिपको आंदोलन' के द्वारा वनों की रक्षा की अहिंसक पद्धति इसी की एक कड़ी है।

सरकार हिमालय क्षेत्र में वृक्षारोपण की एक व्यापक योजना शुरू कर रही है। यह योजना देश में हरियाली पैदा करने के

लिए केंद्रीय पर्यावरण और वन मंत्रालय के अनेक उपायों में से एक है। यह योजना बंजर भूमि विकास के बारे में राष्ट्रीय मिशन द्वारा शुरू की जा रही है। इसके लिए पंचायतों को फंड दिए जाएंगे जिससे वे स्थानीय ग्रामीणों के सक्रिय सहयोग से वृक्षारोपण का काम शुरू करेंगी। केंद्र सरकार ने सभी राज्य सरकारों को वनीकरण के प्रयासों में पहले ही पूरा समर्थन दिया है। 1951 से 1985 तक के 34 वर्षों में लगभग साठ लाख हैक्टेयर भूमि पर पेड़ लगाए गए। 1985-86 में पन्द्रह लाख और 86-87 में 17 लाख हैक्टेयर भूमि पर पेड़ लगाने का कार्य हुआ। इस समय वर्तमान वनों का यथासंभव संरक्षण और नए वनों का रोपण सरकार के प्राथमिक उद्देश्यों में शामिल कार्य है। वैसे तो भारत गिने-चुने उन देशों में एक है जिनकी 1894 में अपनी वन नीति थी। अब सरकार ने वनों की देखरेख करने वाले वन रक्षकों और वन अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के प्रबंध किए हैं। अब इस बात को स्वीकारा जा चुका है कि वनों की सुरक्षा के लिए दृढ़ता से समर्पित लोगों की आवश्यकता है। इसके लिए सरकार वनों के अन्दर और आसपास रहने वाले लोगों के हितों पर विशेष ध्यान दे रही है। वनों का कटाव रोकने के लिए सरकार ने वन संरक्षण अधिनियम 1980 पारित किया है। इसका मूल उद्देश्य वनों के अंधाधुंध कटाव तथा वन भूमि का अन्य कार्यों के लिए प्रयोग रोकना है। इसके अतिरिक्त सरकार ने वन संरक्षण के लिए कई महत्वपूर्ण योजनाएं बनाई हैं और नए वनों का विकास कार्य जोरों पर है।

बंजर भूमि के फैलाव को रोकने के लिए अधिक से अधिक क्षेत्र में सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित किया जा रहा है। राज्यों को इस बात के व्यापक निर्देश दिए गए हैं कि वनरोपण की योजनाओं में अधिक से अधिक लोगों को सम्मिलित किया जाये। महिलाओं, बच्चों और छोटे किसानों का इसमें विशेष योगदान रहे। ग्रामीण निर्धनों को पेड़ों के पट्टे देने का कार्य प्राथमिकता के आधार पर किया जा रहा है। बंजर भूमि विकास मंडल, वनों के चारों और प्रतिरोधक क्षेत्रों की तलाश कर रहा है जहां पर वृक्ष लगाए जा सकें। ये स्थान स्थानीय लोगों की चारे और ईंधन की मांग को पूरा करने के साथ-साथ वनों की भी रक्षा करेंगे। इस संदर्भ में लोगों को विभिन्न माध्यमों से शिक्षित करने पर भी ध्यान दिया जा रहा है। सरकार ने इस बात को सुनिश्चित किया है कि आवश्यक कानूनी प्रावधानों और वित्तीय संसाधनों के सहयोग से वनों के संरक्षण एवं संवर्धन की योजनाएं बनाकर पर्यावरण के बिगड़ते हुए संतुलन को ठीक करने के प्रयास तीव्र गति से किए जाएंगे।

ई-148-डी,
दिलशाद गार्डन, नई दिल्ली-95

वृक्षारोपण

अवधकिशोर सक्सेना

हैं वृक्ष धरा की धन दौलत
जन-जन के हैं ये हित् बड़े

सबकी भलाई में लगे हुए
ये चमर डुलाते खड़े-खड़े।

सर्दी, वर्षा हो, या कि धूप
अपने तन पर ये सब सहते,
फल, फूल, पात, देने में भी
कंजूसी कभी न ये करते।

होते हैं जहां वृक्ष ज्यादा
होती है वहां अधिक वर्षा

वर्षा से फसलें लहरातीं
धन धान्य बढ़े फिर क्या कर्जा।

तपसी समान ये वृक्ष बड़े–
पर स्वार्थ कर रहे हैं जग का
ये क्षरण रोकते पृथ्वी का
मरुस्थल की न बढ़ती सुरसा।

ये अतुल सम्पदा के दानी
इन-सा उपकारी कौन कहां,

उपदेश मूक ये देते हैं
प्रहरी से बन कर जहां तहां।
आओ, इनका वंश बढ़ायें
नये-नये पौधे हम रोपें

मान बढ़ायें हम धरती का
अच्छा अवसर हम क्यों चूकें।

रायजी का मकान
गाड़ी खाने के पास
भाड़ेरी गेट, जिला दतिया, मध्य प्रदेश

पंचायतों के माध्यम से वृक्षारोपण

खजान सिंह

हमारे देश की 70 प्रतिशत से भी अधिक जनता गांवों में निवास करती है, इसलिए देश के विकास के लिए सर्वप्रथम गांवों का विकास जरूरी है। आजादी प्राप्त करने के उपरान्त सरकार का ध्यान गांवों के विकास की ओर गया। देश में 1951-52 में पंचवर्षीय योजनाएं लागू की गई जिनमें गांवों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसी दौरान पंचायतों को पुनः जीवित भी किया। पंचायतों का मुख्य उत्तरदायित्व गांवों का चहुंमुखी विकास करना है। शुरू की गई योजनाओं के प्रारंभ में पंचायतों ने स्कूल भवन, चिकित्सालय, पशु चिकित्सालय, तालाब खुदवाना, सड़कें आदि बनवाने में न केवल अपनी भूमि ही दान में दी अपितु अपने सीमित फण्ड से धन भी इन कार्यों के लिए लगाकर सक्रिय योगदान दिया। इसके साथ-साथ हरित क्रांति, श्वेत क्रांति आदि की सफलताओं में भी पंचायतों की ही मुख्य भूमिका रही है।

हमारे देश की कुल भूमि का लगभग 22 प्रतिशत हिस्सा जंगलों से ढका हुआ बताया जाता है, जबकि राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार 33 प्रतिशत भूमि जंगलों से ढकी हुई होनी चाहिए। इसलिए अब यह अति आवश्यक है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास किए जाने चाहिए। भारत सरकार ने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रतिवर्ष 50 लाख हैक्टेयर भूमि में वृक्ष लगाने का कार्यक्रम देश के सामने रखा है। इसमें केवल देश के प्रयासों से ही सफलता नहीं मिलेगी, बल्कि पंचायतों का योगदान भी आवश्यक है क्योंकि हमारे देश में क्षारीय व लवणीय भूमियों का क्षेत्रफल 7 मि. हैक्टेयर से भी अधिक आंका गया है तथा इस भूमि में से 25 लाख हैक्टेयर भूमि क्षारीय है जिसका काफी हिस्सा पंचायतों के अधीन है और अधिक से अधिक चरागाहों के रूप में उपयोग होता है। इससे अधिक इन भूमियों का गांव के आर्थिक विकास में कोई योगदान नहीं है। ऐसी भूमियों का क्षेत्रफल दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। कृषि योग्य भूमि जिसमें किसान लगातार आमदनी ले रहा है, वृक्ष लगाना पसंद नहीं करता। इसलिए बंजर पड़ी बेकार भूमियों में यह कार्यक्रम सम्भव हो सकता है। इस प्रकार की क्षारीय भूमि उत्तर प्रदेश, पंजाब व हरियाणा के अर्ध-शुष्क, उपनर्म, मैदानी क्षेत्रों में पाई जाती है जहां औसतन 600 से 700 मि. मी. वर्षा होती है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र में भी क्षारीय भूमि के कुछ क्षेत्र हैं।

क्षारीय भूमि के सुधार के लिए वैज्ञानिकों के मत के अनुसार करोड़ों रुपये खर्च आयेंगे जो कि पंचायतों के लिए सम्भव नहीं है, तथा ऐसी भूमि जो कृषि के अयोग्य होने के साथ-साथ वातावरण को भी दूषित करती हैं इन भूमियों में जल सोखने की क्षमता अच्छी भूमि की अपेक्षा कम होती है। ऐसी भूमियों में विनिमय योग्य सोडियम मुख्यतः कार्बोनिट इकट्ठा हो जाने के कारण क्षारांक बढ़ जाता है जिसके कारण फसल पैदा करना असम्भव-सा माना जाता है। अच्छी और उपजाऊ भूमियों की बढ़ती हुई आवश्यकता और वृक्षों के महत्व को देखते हुए देश की अनेक संस्थाएं वृक्षारोपण कार्य में लगी हैं।

के. मृ. ल. अ. स. द्वारा शुरू किये गये 'प्रयोगशाला से खेतों तक' प्रोग्राम के अधीन गांव सुताना की पंचायत ने इस कार्यक्रम को जन आन्दोलन का रूप देने के लिए पंचायत की 75 एकड़ पड़ी बंजर व बेकार भूमि पर केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों की सलाह से व वन विभाग के सहयोग से व्यापक स्तर पर पेड़ लगाने का निर्णय लिया है। भूमि को वन विकास कार्य हेतु वन विभाग को वृक्षारोपण योजना के अन्तर्गत 5 वर्ष के लिए पट्टे पर दिया गया है। विभिन्न पेड़ों की क्षारीयता सहन करने की क्षमता भिन्न होती है तथा ऐसी भूमियों में एक मीटर गहराई के बाद कंकर की सतह भी पाई जाती है जो कि पौधों की जड़ों को सुगमता से बढ़ने में रुकावट डालती है। फिर भी वैज्ञानिकों के अध्ययनों से अब यह सिद्ध हो गया है कि क्षारीय भूमियां वृक्ष लगाने के लिए उपयुक्त हैं। ऐसी भूमियों में एकेशिया निलोशिया निलोटिका (जंगली बबूल), प्रोसोपिस ज्यूलिफ्लोरा (मैसकीट), केजूरीना एकिवजेटीफोलिया (जोस्तोर) और सेसबेनिया एजिप्टिका (ढैंचा) सफलता से उगाए जा सकते हैं। कंकर वाली सतह को तोड़ने के लिए पंचायत ने बरमा छेदक प्रणाली (आगर होल प्रणाली) अपनाई। जैसा कि फोटो नं. 1 में दिखाया गया है। ट्रैक्टर चालित बरमों द्वारा लगभग 150 से. मी. गहरे व 15 से. मी. व्यास के गड्ढे खोदे गये। प्रत्येक पोस्टलहोल या गड्ढे को दोबारा मिट्टी से भरने के लिए मिलाई जाने वाली मिट्टी में 2-3 कि. ग्रा. जिप्सम 5-6 कि. ग्रा. गोबर की खाद तथा 20-30 ग्राम जिंक सल्फेट मिलाया गया। वृक्षों की जातियों को ध्यान में रखते हुए प्रोसोपिस ज्यूलिफ्लोरा (मैसकीट) को चुना गया और जून, 1986 में लगाया गया। पौधों से पौधों का फासला 2 मी.

ट्रैक्टर चलित ओगर होल द्वारा गड्ढे खोदना

तथा लाइन से लाइन का फासला 4 मी. रखा गया। अतः समय-समय पर पौधों की सिंचाई व गुड़ाई का भी प्रबंध किया गया। इस प्रकार वैज्ञानिक विधि अपनाकर कल्लर व क्षारीय भूमि पर लगाए गए पौधों में से 90-95 प्रतिशत पौधे जीवित हैं जो आज जंगल का रूप धारण कर रहे हैं।

इस प्रकार देश में व्याप्त भयंकर ऊर्जा संकट से मुक्ति पाने के लिए तथा पर्यावरण की समस्या से बचने के लिए पंचायतों द्वारा इस तरह के कदम सराहनीय ही नहीं अपितु अति आवश्यक भी हैं क्योंकि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से गांव वालों को इससे अनेक लाभ हैं।

1. कल्लर व बंजर कृषि की दृष्टि से कम उपजाऊ भूमि पर वृक्षारोपण से गांवों के लोगों को आर्थिक दृष्टि से कमजोर परिवारों को स्थायी आय के साधन उपलब्ध होंगे।
2. गांवों में लकड़ी को ही ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए ईंधन की समस्या काफी हद तक हल हो सकती है। साथ ही बहुमूल्य गोबर जिसे उपलों के रूप में जला दिया जाता है, खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।
3. पेड़ों के गिरे पत्ते अच्छी खाद का काम करते हैं जिससे बिना किसी सुधार व लागत के कल्लर व बंजर भूमि की क्षारीयता (पी. एच. मान) कम की जा सकती है। इस प्रकार भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है तथा जल और वायु के आवागमन पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है व भूमि उपजाऊ बन जाती है।

इसके साथ-साथ इमारती लकड़ी, फल-फूल, बीज, तरह-तरह की जड़ी बूटियां तथा दवाइयां आदि भी पेड़ों से ही प्राप्त होती हैं। इसलिए अच्छी और उपजाऊ भूमि की बढ़ती हुई मांग और ईंधन की लकड़ी की निरंतर जरूरतों को ध्यान में रखते हुए वृक्षारोपण अभियान को कार्य रूप देना अति आवश्यक है और ये तभी पूरा हो सकता है जब हमारे देश की पंचायतें इसमें अपनी भूमिका निभाएं। इस प्रकार पंचायती भूमियों पर पेड़ लगाकर सुधार भी किया जा सकता है तथा आने वाले संकट से छुटकारा भी पाया जा सकता है।

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल

सामाजिक वानिकी—एक विश्लेषण

नरेश बहादुर श्रीवास्तव

भारत वर्ष में अतीत काल में वनों को अरण्य कहा गया, वृक्षों को पूजा गया, पूजा में पुष्पों का प्रयोग किया गया और कंद मूल फल खाना हमारी संस्कृति रही। स्पष्ट है कि समाज सदा से पेड़ पौधों व वनों से जुड़ा रहा। मानव जीवन की अत्यावश्यक वस्तुओं के शब्दों की संरचना यथा भवन, उपवन, हवन, पवन व जीवन भी हमें वन शब्द की व्यापक सार्थकता का आभास कराती है।

धर्माचरण व पुण्य प्राप्ति की धारणा ने फलदार वृक्ष लगाने व हरे-भरे वृक्षों को न काटने की परम्परायें हमारे समाज में विकसित कीं। स्वतंत्रता के पूर्व सीमित जनसंख्या से हमारी वन सम्पदा सुरक्षित रही। धीरे-धीरे औद्योगिक विकास ने वनों पर आधारित उद्योग लगा कर वन विनाश प्रारम्भ कर दिया। आज औद्योगिक विकास एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण वनों का विनाश चिंताजनक स्थिति को भी पार कर चुका है। वनों की कमी से गम्भीर भूमि कटाव, सूखा, बाढ़ कृषि उपज व पशुधन में कमी जैसे गम्भीर संकट हमारे सामने हैं। दूसरी ओर लकड़ी एवं इसके उत्पादों की मांग और पूर्ति में व्यापक अंतर भी घटते हुए वन प्रदेश को और घटाने का एक बड़ा कारण है। इस परिप्रेक्ष्य में 1950 में वन क्षेत्र को सुरक्षित रखने व ईंधन, चारा, छोटी-मोटी इमारती लकड़ी तथा कृषि उपकरणों की आवश्यकता पूर्ति के लिये राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिशों के आधार पर सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों को लागू किया गया। सामाजिक वानिकी के राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा निर्धारित लक्ष्य इस प्रकार थे—

1. ग्रामीण क्षेत्रों में गोबर के स्थान पर ईंधन की पूर्ति;
2. छोटे पैमाने पर टिम्बर की पूर्ति;
3. चारे की पूर्ति;
4. आंधी और तेज हवाओं से खेतों का बचाव और
5. स्वास्थ्य एवं मनोरंजन के हेतु।

सन् 1960 में केन्द्रीय वानिकी बोर्ड के गठन से यह आशा की गई कि सामाजिक वानिकी के संचालन, देख-रेख व दिशा-निर्देश तथा प्रबन्ध को संभाला जा सकेगा और देश में वन विकास हो सकेगा। इस बोर्ड ने ईंधन और चारे वाले वृक्षों को सड़कों, नहरों, रेलपथ के किनारों, पंचायत भूमियों, उजड़े वन क्षेत्रों व ऊसर भूमि पर लगाने की अनेकों सिफारिशें कीं। परन्तु इन सिफारिशों पर 1973 तक तो कोई व्यवहारिक कार्य हुआ ही नहीं और बाद का कार्य भी उत्साहवर्धक नहीं है।

राष्ट्रीय वन आयोग के अध्ययन दल ने 1973 में सामाजिक वानिकी के कार्यक्रमों की समीक्षा की। परिणामस्वरूप जो तथ्य प्रकाशित हुए उनसे ज्ञात हुआ कि जो कृषि या सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम विभिन्न एजेंसियों द्वारा चलाये गये वे न केवल असफल रहे वरन् उनसे जनसामान्य में पेड़ लगाने का संदेश भी नहीं पहुंचा। लोगों में कार्यक्रमों के प्रति अरुचि रही। सामान्यतः छूट की निम्न दर, कार्यक्रम क्रियान्वन हेतु साज सामान व ज्ञान-विज्ञान पूर्ण एजेंसी का अभाव, स्थानीय रूप से वृक्षों व स्थलों का चयन न हो पाना और आस-पास के ग्रामीणों का सहयोग न मिल पाना निराशाजनक परिणाम के कारण रहे हैं। जन-सामान्य को हतोत्साहित करने वाले तथ्य हैं—उनमें वन वृक्षों की उपयोगिता का अज्ञान एवं पेड़ उगाने व उनकी वृद्धि में निरंतर देखरेख में लगने वाला लम्बा प्रतीक्षाकाल। दूसरी ओर जन-सामान्य के सक्रिय सहयोग के बिना सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम कभी भी सफल नहीं हो सकते।

इस अन्तरिम रिपोर्ट के बाद केन्द्रीय सरकार ने एक व्यापक कार्यक्रम सूत्रबद्ध करके बड़ी महत्वाकांक्षा के साथ लागू किया। इस कार्यक्रम में सहायता की दर 50% या अधिकतम 1000/- प्रति हैक्टेयर निर्धारित की गई। परिणामतः पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) में 5253.26 लाख रुपयों के खर्च से 567335 हैक्टेयर क्षेत्र में सामाजिक वानिकी का विस्तार किया गया। 1980-84 की अवधि में केन्द्रीय सामाजिक वानिकी कार्यक्रम इस प्रकार रहे—

इसके अतिरिक्त लगभग 15 राज्यों में सामाजिक वानिकी परियोजनायें विदेशी सहायता एजेंसियों की वित्तीय सहायता से भी चलाई जा रही हैं। विश्व बैंक के अतिरिक्त दानकर्ता एजेंसियां हैं—एस. आई. डी. ए. (सीडा-स्वीडिश इण्टरनेशनल डेवलपमेंट एजेंसी), यू. एस. ए. आई. डी. (यूनाइटेड स्टेट्स

वर्ष	केन्द्रीय अनुदान कुल व्यय का 50% तक लाख रु. में	वृक्षारोपण (हैक्टेयर में)	जनता में वितरित पौध (लाख में)
1980-81	426.60	1741	313.55
1981-82	488.02	46963	965.62
1982-83	971.82	69832	1485.62
1983-84	(लक्ष्य) 1200.00	80000	2500.00
कुल योग			
1980-84	3086.44	198536	5264.69
1980-85	(लक्ष्य) 5000.00	260,000	5800.00

एजेंसी फार इण्टरनेशनल डेवलपमेंट), सी. आई. डी. ए. (कनेडियन इण्टरनेशनल डेवलपमेंट अथार्टी) और डी. ए. एन. आई. डी. ए. (डैनिश इण्टरनेशनल डेवलपमेंट अथार्टी)।

विश्व बैंक की सहायता से लगभग 7 राज्यों यथा उत्तर प्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल, जम्मू-कश्मीर व हरियाणा एवं अन्य राज्यों में सामाजिक वानिकी की परियोजनायें चलाई गई हैं।

ऊसर भूमि पर 1985 से देशव्यापी योजना के रूप में वृक्षारोपण कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। यह तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के निर्देश पर घोषित हुआ था। कहने को तो इस कार्यक्रम में 1985-86 के तीन वर्षों में लगभग 50 लाख हैक्टेयर भूमि पर वनरोपण किया गया और इस पर 1400 करोड़ रुपये व्यय हुये। परन्तु योजना आयोग की समीक्षा से यह तथ्य सामने आया है कि गांवों की भूमिहीन जनता व छोटे किसानों को सामाजिक वानिकी का लाभ नहीं मिल सका और चोरी-छिपे या वन अधिकारियों की मिली भगत से वनों के पेड़ काटना उनकी मजबूरी है। साथ ही सामाजिक वानिकी की असफलता के कारण ग्रामीण गरीबों की चारे व ईंधन की समस्या हल नहीं हो सकी क्योंकि यूकलिप्टिस व पापुलर इत्यादि किस्मों के जो वृक्ष अपनाये गये वह लुगदा काठ (पल्प वुड) ही दे सके। पर्यावरण व वन मंत्रालय के विचार में भी सामाजिक वानिकी की योजनायें असफल रही हैं।

गम्भीर चिंता का विषय तो यह है कि भारत में प्रतिवर्ष 15 लाख हैक्टेयर वन विनाश हो जाता है। देश में आवश्यक वन क्षेत्रफल 10 करोड़ हैक्टेयर होना चाहिए। परन्तु 'कागज वनों' को मिलाकर कुल वन क्षेत्र 7.5 करोड़ हैक्टेयर है।

असफलताओं की पुनरावृत्ति

13 राज्यों में सामाजिक वानिकी की योजनायें अपना प्रथम पंचवर्षीय चरण पूरा करके अब दूसरे चरण में प्रवेश कर चुकी हैं। सामाजिक वानिकी का मूल उद्देश्य था—प्राकृतिक वनों का विनाश रोक कर ग्रामीणों को चारा, ईंधन व छोटी-मोटी टिम्बर की आवश्यकताओं को पूरा करना। परन्तु उद्योगपतियों व वन अधिकारियों के संरक्षण में 80% से भी अधिक यूकलिप्टिस लगाया गया और मूल उद्देश्य की प्राप्ति का लक्ष्य ही खो गया। सामाजिक वानिकी परियोजनाओं का द्वितीय चरण भी भूमिहीन ग्रामीण निर्धन लोगों को ईंधन व उनके पशुधन हेतु चारा दे सकेगा? यह प्रश्न अभी भी ज्यों का त्यों है।

दूसरी ओर वनों को नष्ट किये बिना उन पर आश्रित रहने वाली आदिम जातियां इसलिये कठिनाई में हैं कि विकास उन्हें अच्छा आवास व वैज्ञानिक खोजों से परिपूर्ण जीवन जीने के मार्ग देता है परन्तु इस विकास से वन और वन्य जीव दोनों ही नष्ट हो रहे हैं। आदिम जातियों की परम्परायें व दिनचर्या उनके परिवेश में तो प्राकृतिक, नियमित व तर्क संगत हैं। देश चिंतित तो है पर वह वन विनाश भी देख रहा है।

सामाजिक वानिकी का व्यावहारिक आधार कैसे बने—आदिम जातियों व ग्रामीण निर्धनों के लिए सामाजिक वानिकी की रूप रेखा निम्न आधारों पर बने तो ही लक्ष्य प्राप्ति सम्भव है—

(1) प्रत्येक गांव पंचायत को एक इकाई मानकर उस क्षेत्र के कृषि विश्वविद्यालय/कृषि विद्यालय तथा जिला मुख्यालय के वन विभाग से जोड़ कर उन पेड़ पौधों को सूचीबद्ध किया जाये जो उस क्षेत्र में सुविधाजनक रूप से फल-फूल सकें व लक्ष्य समूह की ईंधन व चारे की समस्या का निदान बन सकें।

(2) आवारा पशुओं को नियन्त्रित करने के लिए प्रत्येक गांव पंचायत में पशुगृह बनाये जायें और रोपित वन वृक्षों को सुरक्षित रखने के उपाय सुनिश्चित किये जायें। पशुगृह प्रबंध को वैज्ञानिक आधार देकर गोबर गैस व खाद की उपलब्धता के साथ-साथ कुछ बेरोजगारों को रोजगार मिल सके। इसलिए विकासखण्ड की देखरेख में सरकारी पशुपालन व्यवस्था भी पशुगृह से जोड़ दी जाये।

(3) वन भांति-भांति के संकटों से ग्रस्त हैं। यह संकट गैर सरकारी, सरकारी व ग्रामीण समन्वय से ही दूर हो सकते हैं। इसके लिये ग्राम पंचायतें, विद्यालय, राजस्व व वन विभाग में शिक्षण, प्रशिक्षण व सहयोगी भावनाओं के हेतु एक व्यापक योजना व उसका कार्यान्वयन नितान्त आवश्यक है।

(4) वन व जीवन में तालमेल पाने के उद्देश्य से ही सही, स्टाफ की कमी दूर की जाये व और अधिक लोगों को वन पोषण के आधार पर नौकरी दी जाये।

(5) 'प्रकृति के साथ जीवन', 'प्राकृतिक खेती' व 'प्राकृतिक वन प्रदेशों का विकास' जैसे कार्यक्रम अपनाने से भी आशाजनक परिणाम मिलेंगे।

(6) वन विनाश और पर्यावरण गिरावट का मूल कारण है—बढ़ती आबादी। इसे नियंत्रित व नियमित करने के लिए 'जनसंख्या-रोजगार समन्वय कार्यक्रम' अपनाये जायें जिनका आधार आर्थिक न होकर सामाजिक हो। आर्थिक आधार लाभ और शोषण को जन्म देता है तथा तीव्र प्रतिस्पर्धा व बाजार की कठिनाइयां उत्पन्न करता है।

(7) मरुभूमि व ऊसर भूमि—हमारे देश में 4 करोड़ हैक्टेयर भूमि ऊसर भूमि है और रेगिस्तान इसके अतिरिक्त है। इन भूमियों पर सामाजिक वानिकी उगाने की गहन आवश्यकता है।

(8) यूकलिप्टिस के मामले में तमिलनाडु का अनुकरण किया जाये। वहां यूकलिप्टिस वृक्षारोपण केवल 6% तक सीमित है।

(9) वानिकी उत्पादों का लक्ष्य समूहों में तर्क संगत एवं समान वितरण किया जाये। आजकल ध्येय समान होते हुए भी अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार से उत्पादों का वितरण किया जाता है। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश में कहीं-कहीं गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवारों को ईंधन के लिये लकड़ी (प्रोसोपिस PROSOPIS) मुफ्त दी जाती है तो तमिनलाडु और आंध्र प्रदेश में सार्वजनिक नीलामी से बेच कर आधी धनराशि गांव पंचायतों को दी जाती है। महाराष्ट्र में वृक्षारोपण के तीन वर्ष बाद सुरक्षा और प्रयोग के लिये वृक्षों को ग्राम पंचायतों के हवाले कर दिया जाता है। सारे राज्यों में आयोजन समान होते हुए भी वितरण भिन्न-भिन्न होना एक असमंजस के साथ-साथ अविवेकपूर्ण व्यवस्था भी उपस्थित करता है।

स्थिति गंभीर है

आज न केवल सामाजिक वानिकी वरन् संपूर्ण राष्ट्रीय वन कवच की स्थिति भी गंभीर है। अधिक समस्या दक्षिण भारत में है जहां वर्षा ही नदी जल का स्रोत है और गत दशक के निरंतर सूखा वर्ष, भूमि गत जल स्तर का गिरना, प्रतिवर्ष लम्बी अवधि वाली ग्रीष्म ऋतुयें आदि पर्यावरण कारणों ने भी वनों को कम करने में वृद्धि की है। उत्तर भारत में भी जहां वर्षा के साथ-साथ बर्फ के पिघलने से नदियों को जल मिलता है, स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ रही है। वनोन्मूलन के कारण व्यापक भूमि कटाव और भीषण बाह (रन आफ) के कारण सिल्ट होने से नदी तलों की गहराई में कमी और अपर्याप्त क्षमता बाढ़कारी परिस्थिति उत्पन्न करती है। ऐसे संकेत मिलते हैं कि बाढ़ों में वृद्धि होना अवश्यम्भावी है। भिन्न-भिन्न राज्यों के वन वहां की राज्य सरकारों द्वारा नियंत्रित होने के कारण राष्ट्रव्यापी नीतियों से दूर रहते हैं। और तो और वन संरक्षण व विकास सम्बन्धित राज्य की प्राथमिकताओं से भी दूर रहता है। नदियों के जल प्रबंध भी इसी प्रकार की समस्या से घिरे रहते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि पूरे देश का वनरोपण व प्रबंध केन्द्र सरकार करे। सूखा व बाढ़ की आवृत्तियों को घटाने व इनकी स्थितियों में रोकथाम लाने के लिये भी आवश्यक है वन, बाढ़ व सूखा के केन्द्रीय बोर्डों या अभिकरणों का गठन किया जाये। इससे स्थिति की गम्भीरता के अनुरूप उपचार करने, एकरूपता लाने व राज्यों के विवादों से बचने के रास्ते मिलेंगे और राष्ट्रव्यापी समग्र वन एवं वानिकी विकास का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

सी-7/150 लारेंस रोड,
दिल्ली-110035

वृक्षारोपण में भूमि विकास बैंक की भूमिका

विजय कुमार रूंगटा

भारतीय कृषक अत्याधिक निर्धन है, यह एक कटुसत्य है। यद्यपि सरकार ग्रामीण विकास तथा कृषकों के जीवन स्तर में सुधार के लिये प्रयत्नशील है परन्तु इसके उपरान्त भी किसानों की दशा दीन-हीन ही बनी हुई है। ग्रामीण विकास तथा कृषकों के जीवन स्तर में सुधार के लिए सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों की आलोचना करना तो उचित नहीं है परन्तु यह कहना भी आवश्यक है कि सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रम तथा योजनाएं इतनी सफलता प्राप्त नहीं कर पायी हैं जितनी कि वर्तमान परिस्थितियों में उनसे अपेक्षित है।

ऐसा नहीं है कि सरकार उपरोक्त स्थिति से अनभिज्ञ हो परन्तु सरकार के लिए यह भी संभव नहीं है कि वो जादू के जोर से देश की समस्त समस्याओं को चुटकी बजाते ही हल कर दे। समय-समय पर सरकार द्वारा नई-नई योजनाओं तथा कार्यक्रमों को प्रारंभ किया जाता है जिससे कि वर्तमान स्थिति में सुधार आ सके। कृषकों की विभिन्न आवश्यकताएं होती हैं जैसे—बीज, उर्वरक, सिंचाई के साधन, कृषि उपकरण आदि। इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो सतत् प्रयास किये ही जा रहे हैं परन्तु साथ ही साथ कुछ ऐसे विकल्पों को भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है जिनमें कि उर्वरक, कृषि यंत्र व उपकरण तथा अधिक तकनीकी वस्तुओं की आवश्यकता ही न आये।

भूमि विकास बैंक की वृक्षारोपण योजना

उपरोक्त वर्णित विकल्पों में से एक है वृक्षारोपण। वृक्षारोपण की योजना के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने की संभावनाएं तो अत्याधिक हैं जबकि इसमें उर्वरक, कृषि उपकरणों तथा सिंचाई साधनों आदि की आवश्यकता नहीं है। इन सभी तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक ने फार्म वृक्षारोपण योजना प्रारम्भ की है। इस योजना के अन्तर्गत पापुलर वृक्षारोपण एवं उनके विकास हेतु दीर्घकालीन ऋण प्रदान किया जाता है। इस योजना का लघु, सीमान्त एवं निर्बल श्रेणी के किसान पर्याप्त लाभ उठा रहे हैं क्योंकि वो कृषक कार्यों के साथ-साथ वृक्षारोपण करके अपनी आय में वृद्धि करने में सफल हो सकते हैं। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) द्वारा इस पापुलर विकास योजना को नैनीताल, रामपुर, बरेली, मुरादाबाद, लखीमपुर खीरी, शाहजहांपुर, पीलीभीत, बदायूं एवं बिजनौर जिलों में लागू करने की स्वीकृति दी गयी है।

योजना का क्रियान्वयन

योजना का क्रियान्वयन का कार्य विमको, वन विभाग द्वारा किया जाता है। विमको, वन विभाग एवं बैंक में कार्यरत फील्ड स्टाफ/अधिकारी द्वारा लाभार्थी का चयन किया जाता है। योजना के अन्तर्गत लाभार्थी के चयन के पश्चात बैंक के निर्धारित ऋण प्रार्थना पत्र (भूमि बैंक-4) को लाभार्थी से विधिवत पूर्ण कराकर तथा बैंक द्वारा निर्धारित संलग्न प्रारूप पर तकनीकी एवं आर्थिक एप्रेजल रिपोर्ट साइट प्लान सहित योजना क्षेत्र की बैंक की शाखा में ऋण स्वीकृति एवं वितरण हेतु प्रस्तावित किया जाता है। प्रार्थना पत्र जमा करते समय बैंक के सामान्य नियमों के अनुसार प्रार्थी से एक साधारण अंश की धनराशि एवं प्रवेश शुल्क प्राप्त कर लिया जाता है। साथ ही साथ यदि सहभागीदार हैं तो उनसे भी नियमानुसार नाम मात्र सदस्यता शुल्क जमा करा लिया जाता है। लघु एवं सीमान्त कृषकों से 3 प्रतिशत तथा अन्य से 5 प्रतिशत अंश धन लिये जाने की व्यवस्था की गयी है। इस प्रकार से लाभार्थी का चयन कर लिया जाता है तथा उसे पापुलर लगाने हेतु अथवा पापुलर विकास हेतु ऋण प्रदान कर दिया जाता है। इस ऋण को प्राप्त करके कृषक बिना किसी कठिनाई के वृक्षारोपण कर सकता है तथा लाभ कमाने में सफल हो सकता है।

लाभार्थियों का चुनाव

इस योजना के अन्तर्गत ऐसे लाभार्थी जिनके पास अपनी कम से कम एक एकड़ निजी भूमि है, उनको पापुलर विकास हेतु प्रस्तावित भूमि को बैंक के पक्ष में बन्धक रखकर बैंक मूल्यांकन सूत्र के अन्तर्गत ऋण दिया जाता है। वो कृषक जिनके पास एक एकड़ से भी कम भूमि है इस योजना के लाभ नहीं उठा सकते हैं क्योंकि कम भूमि में वृक्षारोपण कार्य चलना सम्भव नहीं है। भूमि को बैंक के पक्ष में बन्धक रखे बिना इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वृक्षारोपण हेतु ऋण नहीं दिया जाता है।

ऋण वितरण का समय एवं अवधि

पापुलर की खेती के लिए पौधों के रोपण का कार्य माह जनवरी-फरवरी में मुख्यतः किया जाता है इसीलिए ऋण की स्वीकृति एवं किस्त का भुगतान भी माह जनवरी एवं फरवरी तक हर दशा में कृषक को कर दिया जाता है। पौधों की कीमत विकास एवं निवेश पर व्यय की धनराशि विमको को विधिवत चैक द्वारा दी जाती है और कृषक को दी जाने वाली धनराशि आर्डर चैक द्वारा दी जाती है। इस प्रयोजन हेतु आठ वर्ष तक प्रतिवर्ष कृषक एवं विमको को निर्धारित मापदण्डों के अनुसार ऋण का भुगतान किस्तों में किया जाता है। इसके लिए वर्षवार व मदवार प्रति वृक्ष निर्धारित माप दण्ड निम्नवत् आधार पर मान्य होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि एक प्रोजेक्ट कम से कम 150 वृक्षारोपण का होगा। वृक्षारोपण पूरे खेत में या मेंड पर किया जा सकता है। अधिकतम ऋण सीमा प्रति कृषक 30 हजार रुपये है।

माप दण्ड प्रति पौध (वृक्ष)

वर्ष	रुपया	विभिन्न उद्देश्यों के लिये धनराशि का विभाजन					
		पौध	विकास	निवेश	विमको देय धन-राशि	कृषक	कुल
पहला	38	12.50	11	1.50	25.00	13	38
दूसरा	19	—	6	2.00	8.00	11	19
तीसरा	16	—	4	3.00	7.00	9	16
चौथा	17	—	5	3.00	8.00	9	17
पांचवां	14	—	4	1.00	5.00	9	14
छठा	13	—	4	—	4.00	9	13
सातवां	3	—	1	—	1.00	2	3
आठवां	3	—	1	—	1.00	2	3
योग	123	12.50	36	10.50	59.00	64	123

वृक्षारोपण सामग्री एवं अन्य सामग्री विमको द्वारा लाभार्थी को यथावत समय उपलब्ध करायी जाती है तथा यह ध्यान रखा जाता है कि पौधे रोग एवं व्याधि मुक्त हों और उपयुक्त प्रजाति के हों। इस प्रकार की देखरेख होने के कारण किसान को स्वयं ही सभी कार्य करने की आवश्यकता नहीं रहती है। वृक्षारोपण कार्यक्रम के अन्तर्गत लगाये गये इन पापुलर के वृक्षों से माचिस की तीलियां बनाई जाती हैं। बड़े हो जाने पर ये वृक्ष अत्याधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं।

वृक्षों की बिक्री एवं ऋण की वसूली

ऋण उपलब्ध कराने के पश्चात पापुलर वृक्षारोपण और उसके विकास के लिए विमको पूर्ण मार्गदर्शन कर सहयोग देता है तथा विमको ही इसकी खरीदारी करता है। इसमें विमको के सम्बन्धित अधिकारी पापुलर वृक्षारोपण क्षेत्र के लिए निरीक्षण व मार्गदर्शन तिथियां पूर्व में निर्धारित कर बैंक को भी सूचित करते हैं और उसकी सूचना लाभार्थी को भी समय से दे देते हैं। इस योजना के अन्तर्गत वृक्षों की बिक्री विमको के अतिरिक्त किसी अन्य को भी नहीं की जा सकती है। यह प्रतिबन्ध ऋण की वसूली में सहायक सिद्ध होता है। वृक्षारोपण के लिये दिये गये ऋण की वसूली आठ वर्षों के पश्चात प्रारंभ होती है। आठ वर्षों तक ऋण की वसूली निलम्बित रहती है। इस ऋण के ऊपर लघु एवं सीमान्त कृषकों से 10 प्रतिशत तथा अन्य व्यक्तियों से 12.5 प्रतिशत ब्याज लिया जाता है। ऋण की वसूली नवें तथा दसवें वर्षों में दो वार्षिक किस्तों में की जाती है।

योजना की उपयोगिता

छोटे तथा बड़े सभी कृषकों को भूमि विकास बैंक द्वारा चलायी जा रही कार्य फैक्ट्री की इस योजना के अन्तर्गत पापुलर के वृक्ष लगाने से लाभ हो रहा है। इस योजना के अन्तर्गत वृक्षारोपण में आने वाले सभी व्ययों के लिए ऋण प्राप्त हो जाने से कृषकों को वित्त की समस्या नहीं रहती है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि कृषकों को वृक्षारोपण के एक दो वर्ष पश्चात वृक्षों की कुछ देखरेख भी नहीं करनी पड़ती है, जिससे कि कृषक निर्विघ्न रूप से अपने अन्य कृषि कार्य करता रहता है। पापुलर के वृक्षों को मेंड पर भी लगाया जा सकता है जिस कारण से शेष भूमि में कृषक अन्य फसल उगा लेते हैं तथा वृक्षारोपण से होने वाली आय अतिरिक्त रूप से ही प्राप्त हो जाती है।

समस्त विवरण से स्पष्ट है कि भूमि विकास बैंक द्वारा चलायी जा रही फार्म फॉरेस्ट्री की योजना कृषकों के लिए बहुत उपयोगी है। इस योजना के अन्तर्गत वृक्षारोपण करके कृषक लाभ उठा सकते हैं। इस प्रकार से यह योजना निर्धनता दूर करने तथा ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार लाने के दृष्टिकोण से भी लाभकारी व महत्वपूर्ण है। इस योजना का प्रचार एवं प्रसार नियोजित ढंग से किया जाना चाहिए ताकि अधिक से अधिक कृषक इसे समझ सकें तथा इस कल्याणकारी योजना से लाभान्वित हो सकें।

50, शाह कमाल, हापुड़-245101

वन और मानव

सेवा सिंह सागवाल

भारतवर्ष के कुल क्षेत्र में से 1450 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में खेती बाड़ी होती है। हमारे देश में केवल 12 प्रतिशत क्षेत्र जो वनों के अन्तर्गत है, आज पूर्ण रूप से सुरक्षित घोषित किया गया है। एक अन्वेषण के अनुसार भारत में लगभग 1500 लाख हैक्टेयर क्षेत्र पानी या हवा क्षरण से प्रभावित है। इसी प्रकार 200 लाख हैक्टेयर क्षेत्र दलदल के चंगुल में फंसा हुआ है। आज हमारे देश का पांचवां हिस्सा ही वनों के अन्तर्गत आता है जो कि खेती बाड़ी के क्षेत्रफल से दूसरे स्थान पर है। आज हमारे वनों का क्षेत्र संकुचित होता जा रहा है। इसके मुख्य कारण इस प्रकार हैं। वितरणित खेती-बाड़ी, अत्याधिक चराई, पुरातन काल में भूमि का दुरुपयोग आदि।

इन्हीं कारणों से मनुष्य का जीना दुभर-सा हो गया है। आज सबको सांस तक लेना मुश्किल-सा हो गया है। यह सब आज के दूषित वातावरण के कारण हो रहा है। वनों के विनाश के कारण आने वाली पीढ़ियों को बड़ा बुरा समय देखना पड़ सकता है। वनों का विनाश स्वयं मनुष्य का ही विनाश है। आज मनुष्य के पास कोई चारा नहीं रहा और उसको वृक्षों का रोपण करना बहुत आवश्यक हो गया है।

भविष्य में कठिनाइयां

मनुष्यों को भविष्य में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। उनमें से प्रमुख इस प्रकार हो सकती हैं—

बिना वृक्षों का कल

वनों का मानव के जीवन में एक बहुत बड़ा योगदान रहा है। वृक्षों को मनुष्य जाति का सच्चा साथी कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यदि आने वाले कल में हमारे पास वृक्ष नहीं होंगे तो उसका अन्जाम हमारी आंखों के सामने नंगा नृत्य करता हुआ दृष्टि गोचर होगा।

भूमि का बह जाना

वनों की कमी के कारण वर्षा के पानी का बहाव बड़ा ही तेज हो जाता है। उससे भूमि की ऊपरी सतह कट कर बह जाती है। इससे लाखों टन मिट्टी बह जाती है। यह क्रिया भूमि को बंजर व अनुपजाऊ बना देती है।

डांवाडोल वातावरण

वनों और मानव का एक अटूट सम्बन्ध रहा है। आज भी मानव वनों पर कई प्रकार से आश्रित रहता है। वनों की कमी के कारण वातावरण सन्तुलन बिगड़ जाता है। बाद में यह बहुत हानिकारक सिद्ध होता है।

दूषित पर्यावरण

आज मनुष्य यहां पर एक ओर उन्नति की ओर लगातार अग्रसर है वहीं पर वह कई प्रकार की समस्याएं झेल रहा है। दूषित वातावरण के कारण आज मानव कई प्रकार की परेशानियों का शिकार बनता जा रहा है।

भोजन के लिए भोजन को जलाना

वनों के ह्रास के कारण जलाने वाली लकड़ी की बहुत कमी हो गई है। यह सब वनों के अन्धाधुन्ध कटान के कारण घटित हो रहा है। ऐसा मालूम पड़ता है कि मनुष्य आने वाले समय में यह कहने पर विवश हो जायेंगे कि अनाज तो है पर इसको पकाने के लिए लकड़ी नहीं है। गोबर जो अनाज का स्रोत है तथा अनाज को उर्वरक प्रदान करता है। इसे मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए उपलें बना कर ईंधन के रूप में खाना पकाने के लिए प्रयोग कर रहा है।

मनुष्य को अपनी दिन-प्रति-दिन दैनिक कार्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आधुनिक प्रकार की वन पद्धति की अर्थात वन खेती अपनानी चाहिए। वन खेती कोई नया नाम नहीं है बल्कि यह सिर्फ एक खेती-बाड़ी के तरीके का ही एक नाम है। यदि हम गौर से देखें तो पता चलेगा कि वन खेती को तो लोग पुरातन काल से ही अपनाते आये हैं। अनाज के साथ मनुष्य को इमारती लकड़ी प्राप्त होती है। इतना ही नहीं वरन जलाने की लकड़ी, कृषि औजारों की लकड़ी, पशुओं के लिए चारादि भी मिलेगा जो कि अति आवश्यक है।

वन खेती का उद्देश्य

1. हमारे पास जो साधन विद्यमान हैं उनके उपयोग से उत्पादन को बहुरंगी बनाना व सिद्ध करना कि हमारे साधन जो अभी तक अछूत हैं अच्छी पैदाबार दे सकते हैं यदि उनका सही उपयोग किया जाए।

2. छोटे-छोटे किसानों के लिए भी साधन जुटाना ताकि वे अपनी भूमि का सही व आर्थिकता पूर्ण उपयोग कर सकें। वन खेती द्वारा उसका उपयोग अच्छी तरह किया जा सकता है।
3. किसान की बुनियादी आवश्यकताओं का उत्पादन वन खेती द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ भोजन, चारा, जलाने की लकड़ी, इमारत बनाने का सामान आदि।
4. भूमि की उत्पादकता बढ़ाना तथा भूमि (मिट्टी) की उपज शक्ति भारी-भूक्षरण से बचाना और मिट्टी के बहाव को रोका जा सकता है।

वन खेती के लाभ

1. भूमि की क्षमतानुसार उसका सही उपयोग किया जा सकता है।
2. ऐसी भूमि जो अभी कृषि के अन्तर्गत नहीं है उसकी उत्पादकता को पुनः बढ़ा सकते हैं।
3. भूमि का सदुपयोग करना। वृक्ष की ऐसी जातियां उगाकर कर सकते हैं जो कि भूमि की निचली सतह से लाभदायक पदार्थ ऊपर लाती हैं और उनका उपयोग फसल कर सकती हैं।
4. कारखाने की लकड़ी की आवश्यकता को पूरा करना क्योंकि आज मनुष्य की मांग बहुत बढ़ गई है। हमारे विद्यमान वन उनको पूरा नहीं कर सकते। वन खेती ऐसा साधन है जो शीघ्रतापूर्वक इन मांगों की पूर्ति कर सकता है।
5. वनों रहित क्षेत्रों में जलाने वाली लकड़ी तथा छोटे-मोटे काम आने वाली इमारती लकड़ी की उत्पादकता में वृद्धि करना।
6. अच्छी प्रकार से लगाया गया वृक्ष भू-क्षरण को रोकने में सहायता करता है। इस तरह वृक्षारोपण से बेकार पड़ी भूमि का उपयोग ठीक ढंग से किया जा सकता है।
7. स्थानान्तरित खेती-बाड़ी को कुछ सीमा तक कम करना।
8. ग्रामीण समुदाय के लिए काम के अवसर उत्पन्न करना।
9. चरागाहों को सुदृढ़ बनाने के प्रयास करना तथा छोटे-छोटे काश्तकारों की भूमियों पर चारे की फसलों का आयोजन करना। इससे पशुओं की सेहत में काफी बढ़ोत्तरी होगी।
10. वन खेती देहाती क्षेत्रों की सुन्दरता बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है।

मानव की सेवा कैसे?

ऐसा अनुमान है कि इस शताब्दी के अन्त तक भारत की जनसंख्या लगभग दस हजार लाख हो जायेगी। उसी प्रकार पशुओं की आबादी भी 4480 लाख हो जाने की आशा है। ये दोनों हमारे साधनों पर बहुत बड़ा बोझ हैं। उसमें वन खेती कुछ सीमा तक सहायक सिद्ध हो सकती है। वन खेती मानव की सेवा में निम्न प्रकार से रत है।

पर्यावरण में सुधार

मनुष्य तथा पशुओं की बढ़ती हुई संख्या ने आज मानव को पर्यावरण बचाने पर विवश कर दिया है। वन मनुष्य को प्रकृति का एक अद्भुत उपहार है। प्रकृति ने आज मनुष्य को कई प्रकार के पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े दिए हैं जो बहुत लाभदायक होते हैं। उदाहरणार्थ, ग्रेट इंडियन बास्टर्ड एक पक्षी होता है जो कि टिड्डियों के दलों को समाप्त कर देता है। यह कृषि की फसलों को बचाता है। अतः मानव तथा वातावरण के सन्तुलन को कायम रखना अति आवश्यक है जो कुछ सीमा तक वन खेती की सहायता से पूरा किया जा सकता है।

ईंधन का मुख्य स्रोत

ईंधन पालिसी कमेटी के एक अनुमानानुसार भारतवर्ष की ईंधन तथा शक्ति की मांग नीचे दी गई सारणी में दिखाई गई है—

	ईंधन की किस्म	1978-79	1990-91
		(दस लाख टन)	
(क)	वाणिज्य		
1.	सोफ्ट कोक	5.00	20.00
2.	कैरोसीन	3.50	6.00
3.	एल.पी.जी.	0.40	2.00
4.	बिजली	8.00	25.00
			(बी.के.डब्ल्यू.)
(ख)	अवाणिज्य		
5.	लकड़ी व तारकोल	132.00	122.00
6.	गोबर	65.00	53.00
7.	फसल का व्यर्थ सामान	46.00	46.00

ऊपर के प्रसंग से विदित होता है कि ईंधन की बहुत मांग है। इसके लिए बहुत बड़ी वृक्षों की संख्या की आवश्यकता पड़ेगी। एक अनुमान के अनुसार यदि 30 लाख हैक्टेयर भूमि में प्रति वर्ष वन लगाये जायें तो कम से कम दस साल में ईंधन की मांग को पूरा करने हेतु बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण करना पड़ेगा।

चारे की मांग

मनुष्य के भोजन की भांति पशुओं के चारे की भी मांग बहुत अधिक है। विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी मांग और भी बढ़ जाती है क्योंकि सर्दी के मौसम में हरे चारे की बहुत कमी हो जाती है। वन खेती इस मामले में काफी सीमा तक चारे की समस्या को हल कर सकती है। वन खेती कई प्रकार से किसानों को चारा पैदा करने के अवसर प्रदान करती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि इस शताब्दी के अन्त तक लगभग एक बिलियन जनसंख्या को एक बिलियन टन दूध की आवश्यकता पड़ेगी ठीक इसी प्रकार मांस के लिए भी बहुत पशुओं की आवश्यकता पड़ेगी तथा इनको पालने हेतु चारा भी बहुत अधिक मात्रा में चाहिए। इन मांगों को पूरा करने में वन खेती बड़ी सीमा तक सहायता कर सकती है।

कृषि की आर्थिकता में योगदान

कृषि तथा वानिकी का एक अटूट सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं तथा एक दूसरे के पूरक हैं। रसायनिक खाद की बढ़ती हुई मांग को वन खेती ही बड़ी सीमा तक पूरा कर सकती है। आज गोबर की खाद की बहुत कमी है क्योंकि गोबर को खाद के रूप में प्रयोग न करके किसान लोग उसको जलाने के लिए उपलों के रूप में प्रयोग करते हैं जो कि एक बहुत जरूरी आवश्यकता बन गई है। ऐसा किया जाना वैसे स्वाभाविक भी लगता है क्योंकि किसान के पास ईंधन का कोई विशेष साधन नहीं है। इसीलिए वह गोबर को ही ईंधन के रूप में प्रयोग में लाता है। नीचे दी गई सारणी से इसका पूरा ब्यौरा मिलता है कि वन खेती न केवल ईंधन की लकड़ी ही प्रदान करती है बल्कि उससे उर्वरक भी मिलते हैं जो कि हमारी कृषि की आर्थिक स्थिति को भी सुधारने में सहायता करती हैं। रसायनिक उरर्वक तथा सूखे घास-फूस की तुलनात्मक कीमत (वृक्ष एवं घास के आधार पर)

वृक्ष/घास की जाति	सूखे घास-फूस की पैदावार कि. ग्रा./है/वर्ष	रसायनिक उरर्वक (कीमत रुपयों में)	सूखा घास-फूस* (कीमत रुपयों में)
बबूल	8,000	416.00	320.00
बांस	6,000	312.00	290.00
सीरीस	5,000	260.00	200.00
टीक	4,600	235.00	185.00
सफेदा	1,800	94.00	74.00

*सूखे घास-फूस कम्पोस्ट की कीमत केवल 4/- प्रति 100 कि. ग्रा. के हिसाब से ली गई है।

हवा रोधक तथा शरण पट्टियां

भारत में एक अनुसंधान से पता चलता है कि जो फसलें शरण पट्टियों के अन्तर्गत उगाई गई हों उनके उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई जो यह प्रमाणित करती है कि शरण पट्टियां कृषि की फसलों को बचाती हैं। उदाहरणार्थ मूंगफली, लाल चना तथा बाजरा की फसलों के उत्पादन में क्रमशः 75, 48 तथा 63 प्रतिशत अधिक वृद्धि हुई। राजस्थान में खेजड़ी का वृक्ष खेतों के बीच के अलावा खेतों के चारों ओर शरण-पट्टियों के रूप में उगाये जाते हैं। वन खेती इसमें बहुत अहम् रोल अदा कर सकती है। इससे न केवल कृषि की फसलों को तेज हवाओं से बचाया जा सकता है बल्कि इनके उत्पादन में भी वृद्धि होती है जैसे कई वृक्ष भूमि में नत्रजन की मात्रा जमा करते हैं जो कि कृषि की फसलों के लिए अति आवश्यक है।

रोजगार के साधन

वन खेती तथा सामाजिक वानिकी रोजगार के बहुत से अवसर प्रदान करती है। भारत में 600 से भी अधिक रोजगार के आफिस हैं जो रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। सन् 1982 में हमारे देश में लगभग 170 लाख आदमी बेरोजगार थे जिनमें 50 प्रतिशत से अधिक पढ़े-लिखे थे। लगभग 70 प्रतिशत लोगों को जमीन तथा उसी पर आधारित धंधों से काम मिला है। इन लोगों की संख्या को कुछ सीमा तक वन खेती से प्राप्त रोजगारों में लगाया जा सकता है।

वनों से अन्य उत्पादन

इस समय लगभग वार्षिक निर्यात का 60 प्रतिशत भाग वनों के अन्य उत्पादन बनाते हैं। 1970-71 में वसा के तेल का निर्यात 1.81 लाख टन था, जो 1978-79 में लगभग बढ़कर 10.43 लाख टन हो गया था जिसकी कीमत 537.98 करोड़ रुपये आंकी गई है। वन-खेती के अन्तर्गत ऐसे वृक्ष आसानी से उगाये जा सकते हैं जो तेलादि दें। इसी प्रकार कई प्रकार के और वृक्ष जैसे रबड़, रेशा देने वाले भी सुगता पूर्वक उगाये जा सकते हैं।

अतः वन खेती का मानव की सेवा में बहुत बड़ा योगदान है।

शेरे कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,

श्री नगर (जम्मू एवं कश्मीर)

सामाजिक वानिकी का महत्व

डा. विजय लक्ष्मी गौड़

यह सम्पूर्ण सृष्टि दो भागों में विभक्त है:– 1. जड़ 2. चेतन। चेतन पुनः चार रूपों में विभाजित है:–

1. स्वेदज, 2. अण्डज जैसे मुर्गी आदि 3. जरायुज जैसे मनुष्य आदि तथा 4. उद्भज्ज (पृथ्वी के अन्दर से उत्पन्न होने वाले) जैसे पेड़, पौधे आदि। सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत दो शब्द हैं। सामाजिक शब्द का निर्माण 'समाज' शब्द से तथा 'वानिकी' का तात्पर्य है वन्य सम्बन्धी। वन हमारे समाज के लिए किस प्रकार उपयोगी हैं तथा वनों की रक्षा हेतु हमें क्या करना चाहिये, यही इस विषय का आधार है। समाज का तात्पर्य है:—मनुष्यों का समूह।

मनुष्य का सृष्टि के जड़-चेतन सभी रूपों से सम्बन्ध है। आदि काल से ही प्रकृति के साथ मनुष्य का गहरा सम्बन्ध चला आ रहा है। मनुष्य ने प्रकृति की गोद में ही जन्म लिया और उसी में अपने भरण-पोषण हेतु सामग्री प्राप्त की। प्रकृति ने मानव जीवन को संरक्षण प्रदान किया। वनस्पति से मनुष्य का सम्बन्ध निःसन्दिग्ध है।

मनुष्य ने जन्म लेते ही पेड़ों का आश्रय लिया। आदि मनुष्य ने हिंसक पशुओं से बचाव हेतु पेड़ों पर अपना निवास बनाया। पेड़ों के फल ही उसके भोजन रूप थे। सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से बचने के लिये उसने छायादार वृक्षों का सहारा लिया। घने वृक्षों के नीचे-झोपड़ी बनाकर मनुष्य ने अपनी तथा परिवार की आंधी, वर्षा, शीत के संकट से रक्षा की। पेड़ों की लकड़ी उसके ईंधन के काम आई। यही नहीं, पेड़ों की लकड़ी, बांस आदि से उसने विशेष प्रकार के शस्त्र तथा औजार भी बनाये।

वनों का पौराणिक महत्व भी कम नहीं है क्योंकि वनों में वृक्षों के नीचे पंचवटी में भगवान श्री रामचन्द्र ने सीता तथा लक्ष्मण के साथ वनवास का दीर्घकाल व्यतीत किया।

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया, वैसे-वैसे पेड़ पौधों का उपयोग भी बढ़ता गया। वृक्षों से प्राप्त लकड़ियों का प्रयोग न केवल ईंधन के लिये किया गया, अपितु उससे मकानों की छतें, दरवाजे तथा खिड़कियां आदि भी बनाये जाते हैं। वर्तमान युग में लकड़ियों का उपयोग इतना बढ़ा है कि उसका वर्णन करना दुष्कर है। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि ऐसा कोई भवन नहीं जहां लकड़ी की वस्तुओं का उपयोग न होता हो। वृक्षों की उपयोगिता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अगर वृक्ष न होते तो संसार में जीवन न होता।

वैज्ञानिकों का मत है कि यदि विश्व में पेड़-पौधे न होते तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता था। पेड़ ही दूषित वायु को शुद्ध करके उसे श्वसन योग्य बनाते हैं।

वृक्षों का महत्व एवं गौरव को समझते हुए हमारे पूर्वजों ने इनकी आराधना पर बल दिया। पीपल, बरगद आदि वृक्षों की पूजा इस तथ्य का प्रमाण है। जैसे पीपल के वृक्ष को काटना पाप समझा जाता है। इससे वृक्ष सम्पति की रक्षा का भाव प्रकट होता है। पृथ्वी को हरा-भरा सुन्दर तथा आकर्षक बनाने में वृक्षों का बहुत बड़ा योगदान है। इस हरियाली के कारण ही बाग-बगीचों का महत्व है।

वृक्षों का आधिक्य पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाता है। मरुस्थल के विकास को रोकने के लिए वृक्षारोपण की अति आवश्यकता है। वृक्ष, मिट्टी के कटाव को रोकने में सहायता करते हैं। वर्षा के प्रवाह से ऊपरी उपजाऊ मिट्टी के बहाव के कारण पृथ्वी की उर्वरकता नष्ट होने की आशंका रहती है। वृक्ष मिट्टी के कटाव को रोककर इसे उपजाऊ बनाये रखने में सहायक हैं।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां का जीवन खेती पर ही आधारित है। कृषि के लिए जहां उपजाऊ भूमि की आवश्यकता है वहीं जल भी उतना ही आवश्यक है। सिंचाई का सबसे उत्तम स्रोत वर्षा है। वर्षा के जल की तुलना में नदियों, नालों, झरनों आदि के जल का कोई महत्व नहीं है। फिर नदियों,

नालों आदि में भी तो जल वर्षा के कारण ही प्राप्त होता है। इसमें जलाभाव की पूर्ति भी वर्षा के द्वारा होती है। वर्षा का मुख्य कारण भी वृक्ष ही है। आकाश में चलती हुई मानसून हवाओं को वृक्ष अपनी और आकर्षित करते हैं। इसके अतिरिक्त वर्षा के जल को धरा की भीतरी सतह तक पहुंचाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि होती है।

वृक्ष हमारे स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी हैं। क्योंकि हमारे द्वारा आक्सीजन श्वास के रूप में ग्रहण की जाती है तथा कार्बन डाई आक्साइड बाहर निकाली जाती है। इस दूषित वायु कार्बन डाई आक्साइड को वृक्ष ग्रहण कर लेते हैं तथा बदले में स्वच्छ तथा शुद्ध आक्सीजन विसर्जित करते हैं। अतः जहां वृक्ष हमारे जीवन चक्र को स्वस्थ रखने में सहायक है वहीं नेत्रों के लिए भी लाभकारी हैं। आंखों को हरियाली के द्वारा विशेष प्रकार की शक्ति का अनुभव होता है तथा हृदय को भी एक विशेष बल मिलता है।

वृक्षों की शोभा नयनाभिराम होती है। यही कारण है कि हम अपने घरों में भी छोटे-छोटे पेड़ पौधे लगाते हैं। वृक्षों पर चहकते पक्षियों का मधुर कलरव साधारण मनुष्य तो क्या कवियों का भी हृदय आकर्षित कर लेता है। वृक्षों से प्राप्त होने वाले फल, सब्जियां आदि खाद्य-समस्या के समाधान में सहायता करते हैं। अन्न आदि खाद्य पदार्थ भी वनस्पतियों से ही प्राप्त होते हैं।

दूध, जो कि बड़े ही नहीं वरन् देश के भविष्य के कर्णधार शिशुओं के लिए भी अत्यंत उपयोगी है, जिन पशुओं से हमें प्राप्त होता है वे भी वृक्षों से ही अपना आहार प्राप्त करते हैं। पशु हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इन पशुओं का जीवन भी वनस्पतियों, वृक्षों आदि पर भी निर्भर है। इस प्रकार ये वृक्ष हमारे लिए अत्यन्त लाभप्रद हैं।

विभिन्न प्रकार की औषधियां भी वनस्पतियों से प्राप्त हुई हैं। अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियां भी वृक्षों के समूह वन से ही प्राप्त होती हैं।

वृक्षों से घिरे हुए प्रदेश को ही वन कहते है। जैसे कि उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि वृक्ष, पेड़, पौधे हमारे जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि हमारे जीवन के मूल भूत आधार हैं भोजन, श्वास आदि इन सभी में वृक्षों का महत्व सुस्पष्ट है। जब एक वृक्ष हमारे लिए इतना उपयोगी है तो 'वृक्षों का समूह' अर्थात् वन का महत्व स्वयंसिद्ध ही है।

अब प्रश्न यह उठता है कि निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप वनों का निरंतर ह्रास हमारे तथा हमारे समाज के लिए एक प्रश्न चिन्ह बनता जा रहा है। जनसंख्या बढ़ने से प्रदूषण का प्रकोप भी बढ़ता जा रहा है। जिससे वायुमंडल प्रदूषित हो रहा है। वायुमंडल में कार्बन डाईआक्साईड की मात्रा बढ़ रही है तथा इस वायु को शुद्ध करने वाले वृक्षों की संख्या कम होते जाने के कारण आक्सीजन का अनुपात घटता जा रहा है। अगर वनों के विनाश पर रोक नहीं लगाई गई तो जीवन के प्रति एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो जायेगी। जड़ी बूटियां तथा अनेक प्रकार की अन्य औषधियां जो हमें वनों से प्राप्त होती हैं उनके लिए भी वनों का संरक्षण अति आवश्यक है।

यह कहना अनुचित होगा कि वनों की सुरक्षा के प्रति हमारी सरकार का ध्यान आकृष्ट है क्योंकि भारत में वनों की सुरक्षा तथा उन्नति के लिए सन् 1952 में संसद में एक प्रस्ताव पास करके, देश के समस्त क्षेत्र पद के एक तिहाई भाग में वनों और वृक्षों के लगाने की व्यवस्था की गई थी।

यों तो भारत में प्राचीन काल से ही 'मदनोत्सव' आदि अनेक उत्सव वृक्षारोपण तथा वृक्षपूजन सम्बन्धी होते आये है। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वनस्पतियों के संवर्धन के लिए चलाया गया 'वन महोत्सव' अपना विशेष महत्व रखता है। यदि नये वृक्ष न लगाये जायें, तो पुराने वृक्ष क्षीण होते-होते एक दिन समाप्त हो जायेंगे। इसलिए वृक्षारोपण का यह उत्सव प्रति वर्ष धूम-धाम से मनाया जाता है।

भारत में विभिन्न जातियों के 15,000 पेड़ पौधे पाये जाते हैं। यह देश वनस्पति सम्पति का धनी है। यह अनुमान्य है कि वृक्षों के विकास के लिए हमारे पूर्वज किस प्रकार प्रयत्न करते आये होंगे।

हमारे देश में लगभग 7 करोड़ 53 लाख हैक्टेयर भूमि वनों से ढकी हुई है। इस प्रकार पूरे क्षेत्रफल के 25% भाग में वन-भूमि है। आवश्यकता है वनों को बढ़ाने की। सभी राज्यों की सरकारें इस दिशा में जागृत हैं तथा कार्य कर रही हैं।

देश के वरिष्ठ विद्वान तथा वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि वन सम्पदा की वृद्धि भी उतनी ही आवश्यक है, जितनी अन्य प्रकार के उत्पादनों की वृद्धि आवश्यक है। वृक्षारोपण भी कृषि के समान ही आवश्यक है। वनस्पतियों से स्थान सौंदर्य अभिव्यक्त होता है, मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा होती है। बाढ़, सूखे, भूक्षरण आदि को रोकने में सहायता मिलती है। यही नहीं पेड़ पौधों की पत्ती आदि के सड़ने से प्राकृतिक खाद भी प्राप्त होती है जिससे भूमि की उर्वरकता बढ़ती है। नदी तटों पर पेड़ों के कारण कटाव कम होता है। महावृक्ष बाढ़ के वेग को रोकते हैं।

(शेष पृष्ठ 45 पर)

पर्यावरण और सामाजिक वानिकी

अंकुश्री

कारखानों से निकली सल्फर डाय आक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड गैस वायुमंडल में विद्यमान वाष्प से मिल कर सल्फ्यूरिक एसिड और नाइट्रिक एसिड में बदल जाती है। यही एसिड जब धीरे-धीरे धरती पर गिरता है तो उसे 'एसिड रेन' या 'तेजाबी वर्षा' कहते हैं। एसिड रेन से पेड़-पौधों को नुकसान पहुंचता ही है, इससे फसल पर भी प्रभाव पड़ता है। धरती की हरियाली पर तेजाबी वर्षा का बुरा असर पड़ता ही है, मनुष्य और पशु-पक्षी को भी इसका कुफल भुगतना पड़ता है। इससे बड़े-बड़े क्षेत्रों में फैले वनों का विनाश हो जाता है। फ्रांस, पूर्वी एवं पश्चिमी जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया और स्कैंडेनीवियाई जैसे विकसित देशों में तेजाबी वर्षा से बड़ी मात्रा में वनों का विनाश हुआ है।

तेजाबी वर्षा

तेजाबी वर्षा (एसिड रेन) शब्द का प्रयोग पहली बार 1873 में एक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने किया था। जब किसी वन के ऊपर तेजाबी वर्षा होती है तो शुरू में पेड़ों की पत्तियों का रंग उड़ने लगता है और शाखाएं गिरने लगती हैं। प्रायः तीन वर्ष के अंदर पेड़ की सारी पत्तियां गिर जाती हैं, जड़ें सिकुड़ जाती हैं। पेड़ की रोग से लड़ने की शक्ति खत्म हो जाती है। प्रभावित पेड़ कीटों, दीमकों आदि के आक्रमण से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में यह बीमारी इतनी तेजी से बढ़ी है कि कुछ देशों में तो प्रतिवर्ष एक वर्ग किलो मीटर में करीब एक सौ टन तेजाबी वर्षा हो जाती है। तेजाबी वर्षा केवल अपने देश को ही प्रभावित नहीं करती है बल्कि इसका असर पड़ोसी देशों पर भी पड़ता है। स्कैंडेनीवियाई देशों में इस प्रदूषण के कारण करीब 15 प्रतिशत पेड़ों का विकास रुक गया है। कोयला जलाने वाले कारखाने और अन्य उपयोगकर्त्ता—ऐसे प्रदूषण के लिये 80 प्रतिशत जिम्मेदार हैं।

प्रदूषण के प्रमुख कारक

प्रदूषण के कारकों में उद्योगों का नाम तो लिया ही जाता है, गैर-उत्पादक इकाइयों से भी प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है। निजी वाहनों से निकले धुएं से भी प्रदूषण फैलता है। कुछ औद्योगिक देशों में तो वाहनों का औसत प्रति व्यक्ति दो तक पहुंच गया है। जहां इतनी अधिक संख्या में वाहन हों, वहां के वायु प्रदूषण की स्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

कल-कारखानों और वाहनों की तरह प्रदूषण के अन्य दूसरे कारक भी हैं। वायु प्रदूषण का असर केवल वायु तक ही सीमित नहीं होता है। वर्षा का पानी वायु के सारे प्रदूषण को बहा कर जलाशयों और नदियों में लेकर चला जाता है, जिससे जल प्रदूषित हो जाता है। वायु प्रदूषण और जल प्रदूषण की तरह ध्वनि प्रदूषण और दृश्य प्रदूषण भी हमारी समस्या बना हुआ है।

प्रदूषण चाहे जिस आकार-प्रकार का हो, उसका असर हमारे पर्यावरण पर गुंफित रूप से पड़ता है। प्रदूषण की स्थिति ऐसी है कि वैज्ञानिकों को इसके तत्वों की सही-सही जानकारी तक नहीं हो पायी है। फिर भी ज्ञात जानकारी के आधार पर ही प्रदूषण के खिलाफ जेहाद छिड़ा हुआ है; ताकि इसके प्रभाव को जहां तक संभव हो सके, कम किया जा सके।

पर्यावरण के प्रदूषण का एक प्रमुख कारण वनों का विनाश है। 1985 में उत्तरी अफ्रीका के कई देशों में पड़ा भीषण अकाल वनों के विनाश का ही परिणाम था। वन काटने से वर्षा का अभाव हो ही जाता है, उस क्षेत्र की भूमि की उर्वरता भी समाप्त या कम हो जाती है। परिणामतः वहां की अनेक वनस्पतियां समाप्त हो जाती हैं और वह भूमि शीघ्र ही क्षरण के कारण रेगिस्तान में बदलने लगती है। वन विनाश का खतरा उष्णकटिबंधीय राज्यों में ही नहीं, शीतोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में भी आ गया है। औद्योगिक कारखानों का जहरीला अपविष्ट वातावरण में प्रदूषण फैला रहा है, जिसका वनों पर घातक प्रभाव पड़ता है।

वनों से लाभ

वनों या वृक्षों से हमें हरियाली और छाया मिलती है, जिससे मन को शांति मिलती है, शरीर को भी विश्राम मिलता है। वनों से शुद्ध वायु मिलती है, अनेक दैनिक आवश्यकताएं भी पूरी होती हैं। वनों से धरती की उर्वरा शक्ति बढ़ती है, भू-क्षरण और भू-स्खलन में भी कमी आती है। वनों से बाढ़ में कमी आती है तथा सूखे की स्थिति नहीं आ पाती है। ये सारी स्थितियां पर्यावरण से संबंधित हैं। इस तरह हम पाते हैं कि पर्यावरण का वन से बहुत निकट का और घनिष्ठ संबंध है।

सामाजिक वानिकी की आवश्यकता

पहले वन प्राकृतिक रूप से ही पाये जाते थे। लेकिन प्राकृतिक वनों की एक सीमा होती है। उसे उस सीमा के अंदर

सुरक्षित और घना अवश्य किया जा सकता है, मगर बढ़ाया नहीं जा सकता है जबकि जनसंख्या और पशुओं की संख्या में दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है। ऐसी परिस्थिति में यह नितांत आवश्यक है कि वनों को उसकी प्राकृतिक सीमा से बाहर भी लगाया और बढ़ाया जाये। इसके लिए केन्द्रीय कृषि आयोग के सुझाव पर 1978 में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम की शुरुआत की गयी।

यों 'सामाजिक वानिकी' शीर्षक के अधीन यह कार्यक्रम 1978 में अवश्य लागू हुआ। लेकिन उससे बहुत पहले राष्ट्रीय वन नीति- 1952 में भी ग्राम्य वन और वृक्ष भूमि जैसे कार्यक्रमों का प्रावधान रखा गया था। बाद में तृतीय पंचवर्षीय योजना में भी कृषि वानिकी नामक एक योजना शुरू की गयी थी। फिर 1968-69 में विस्तार वानिकी और ग्राम्य वृक्षारोपण जैसी योजनाएं शुरू हुईं। ये सारी योजनाएं कुछ हद तक सामाजिक वानिकी जैसी ही थीं।

सामाजिक वानिकी : उद्देश्य एवं लाभ

सामाजिक वानिकी का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में जलावन की पूर्ति, गोबर का खाद के रूप में प्रयोग, छोटी इमारती लकड़ी और चारे की आपूर्ति, खेतों को वायु के प्रकोप से बचाना और मनोरंजन की सुविधाएं उपलब्ध कराना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सामाजिक वानिकी को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया गया है—1. कृषि वानिकी, 2. विस्तार वानिकी, 3. निम्न कोटि के वनों का पुनर्वास और 4. मनोरंजन वानिकी।

वनों का विस्तार कर सामाजिक वानिकी एक तरफ प्राकृतिक वनों पर दबाव कम करता है, दूसरी तरफ इससे अग्रलिखित महत्वपूर्ण लाभ भी हैं। जैसे बेकार पड़ी भूमि का समुचित उपयोग, भू-संरक्षण और जल संचय में सहायक, भारी वर्षा और बाढ़ से होने वाली हानि से बचाव, वातावरण को शुद्ध रखने में सहायक, छोटी इमारती और जलावन की लकड़ी की सुलभ प्राप्ति तथा मनुष्यों को फल-फूल, बीज आदि और पशुओं को चारा आदि की प्राप्ति। प्रथम तीन लाभ का सीधा प्रभाव हमारी कृषि पर पड़ता है और कृषि योग्य भूमि का विस्तार होता है। इन सारी प्राप्तियों का सम्मिलित रूप देखने से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक वानिकी कार्यक्रम हमारे पर्यावरण के संतुलन को नियंत्रित करने में हमारी बहुत बड़ी सहायता करता है।

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम हमारे देश के हर क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय हो रहा है। नित नये लोग इस कार्यक्रम को अपनाने लगे हैं। स्वीडन सरकार भी इस कार्यक्रम को बढ़ाने और लोकप्रिय बनाने में भारत की सहायता कर रही है।

सामाजिक वानिकी का आर्थिक पक्ष

लोकप्रियता का एक और प्रमुख कारण है सामाजिक वानिकी का आर्थिक पक्ष। इस कार्यक्रम के अंतर्गत प्रायः वैसी ही भूमि पर वृक्ष लगाये जाते हैं जो कृषि कार्य में प्रयुक्त नहीं होती है। बंजर या बेकार पड़ी भूमि पर लगाये गये कुछ वृक्षों का लाभ शीघ्र परिलक्षित होने लगता है। इस लाभ को देख कर नये लोग भी इस कार्यक्रम को अपना लेते हैं।

कुछ ऐसे वृक्ष हैं, जिन्हें सामाजिक वानिकी के अंतर्गत लगाने से विशेष लाभ मिलते हैं। महुआ, नीम, कुसुम, करंज आदि के बीजों से तेल निकलता है, जो खाने या लगाने के काम आता है। चंदन, अगर, देवदार, यूक्लिप्टस आदि के तेल का साबुन, सुगंध, दवा आदि उद्योगों में व्यावसायिक महत्व है। बबूल, आंवला, हर्रा आदि का चमड़ा के टैनिंग और रंग के उद्योग में प्रयोग होता है। बबूल, नीम, खैर, गलगल, पियार, धो, केवंजी आदि के वृक्ष की टहनियों से कीमती गोंद मिलता है। बांस और बेंत टोकरी, फर्नीचर, खिलौने एवं उपयोग के अन्य सामान बनाने में कुटीर उद्योग में काम आता है। आम, अमरूद, बेल, कटहल, कदम, बेर, पपीता आदि के वृक्षारोपण से कीमती फल प्राप्त होता है। टसर और लाह की खेती वृक्षों पर ही की जाती है।

इस तरह सामाजिक वानिकी से वनों से मिलने वाले सारे लाभ मिल ही जाते हैं, समाज की आर्थिक स्थिति भी सुधर जाती है और पर्यावरण के संतुलन में तो इसका भरपूर सहयोग मिलता ही है।

वन भवन, रांची-834002

(पृष्ठ 42 का शेष)

अतः जनता तथा सरकार का यह कर्तव्य है कि पेड़-पौधों की संख्या बढ़ाने में योगदान दें। सूने तथा उजाड़ स्थानों पर वृक्ष लगाये जायें। वृक्षों की लकड़ी से औद्योगिक क्षेत्र में देश प्रगति कर सकता है क्योंकि दियासलाई, खेल का सामान, प्लाईवुड, गोंद, रबड़, लाख, कागज आदि उद्योगों के लिए पेड़ आवश्यक हैं। इनके फल, फूल, पत्ते, शाखा, छाल, जड़ आदि प्रत्येक अंग हमारे लिए उपयोगी हैं।

स्पष्टतः वृक्ष हमारे जीवन के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। अतः वन संरक्षण एवं वृक्षों की वृद्धि में प्रत्येक देशवासी का सहयोग अपेक्षित है। वृक्षों को काटना भी आवश्यक है क्योंकि वह हमारे दैनिक जीवन में उपयोग आते हैं परन्तु जितने वृक्ष काटे जायें, उससे अधिक नये वृक्ष लगाये जायें। प्रत्येक व्यक्ति को वन महोत्सव के अवसर पर एक पेड़ अवश्य लगाना चाहिए। वृक्षारोपण की प्रवृत्ति को प्रबल बनाकर ही हम अकाल जैसे प्रकोपों से मुक्त हो सकते हैं।

उपर्युक्त समस्त विवेचना का निष्कर्ष यही है कि हमारे समाज के लिए वनों का अत्यंत महत्व है। अतः समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वृक्षों की रक्षा के लिए अपना सहयोग दें, जिससे हमारा समाज सुखी, समृद्ध हो सके।

1 बी./14 आई, बाघम्बरी रोड,
अल्लापुर, इलाहाबाद

रामराज्य की ओर

इन्द्रजल धर्मशाला

गांधीजी भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना [illegible] जिसे वे रामराज्य कहते थे, [illegible] अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्ति और उसके लिए चलाए [illegible] राष्ट्रीय आंदोलन [illegible] इस लक्ष्य का साधन [illegible] रामराज्य की स्थापना से गांधीजी का आशय किसी धर्म विशेष पर आधारित समाज की स्थापना करना नहीं था, [illegible] वे ऐसे कल्याणकारी समाज को स्थापित करना चाहते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वावलम्बी हो। वे सत्ता और विकास के विकेन्द्रीकरण के सबल हिमायती थे क्योंकि वे राज्य को एक आत्मनिर्भर गांव मानते थे। गांवों का शहरों की तुलना में पीछे रह जाना, अंधाधुंध औद्योगीकरण और शहरीकरण को वे रामराज्य के लक्ष्य में आने वाली बाधाएं मानते थे.

नतीजा यह है कि रामराज्य की स्थापना की बजाए कुछ निहित स्वार्थों ने देश के जन-मानस को विवादों में झोंक दिया है। गांवों और कृषि के विकास के बिना किसी भी कल्याणकारी राज्य की स्थापना संभव नहीं है।

केन्द्र में नई [illegible] सरकार के इस आश्वासन से कि ग्रामीण क्षेत्रों में कुल योजना व्यय का पचास प्रतिशत खर्च किया जाएगा, [illegible] कुछ आशाएं बंधी हैं। इसके अलावा प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने [illegible] उद्योगों के साथ विकास की बात भी कही है। योजना आयोग [illegible] में भी स्वर्गीय [illegible] और जे. डी. सेठी जैसे गांधीवादी लोगों को शामिल किया गया है। ऐसे ही एक सदस्य डा. हरस्वरूप सिंह के अनुसार हमें कृषि और संबंधित गतिविधियों को उद्योगों के समान ही दर्जा देना चाहिए। अमरीका और कई अन्य देशों में भी ऐसा ही किया जाता है।

इस साल अगस्त तक आठवीं योजना का दस्तावेज तैयार हो जाएगा। इस बीच [illegible] कृषि क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुए हैं। अब खाद्यान्नों [illegible] आत्मनिर्भर हैं, वर्ष 1987-88 में सूखे की स्थिति के बावजूद भी भारत ने खाद्यान्न आयात नहीं किये। अब कृषि में विविधता लाने, क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने, कृषि और उससे जुड़े हुए उद्योगों में ऐसी तकनीकें इस्तेमाल करने जिसमें पूंजी की बजाए ज्यादा श्रम इस्तेमाल हो तथा खेती के नए तरीकों को अपनाने [illegible] जा रहा है. लेकिन इन सबके बावजूद भारतीय कृषि की वृद्धि दर में कोई बढ़ोतरी नहीं हो पाई है। देश के [illegible] का [illegible] कृषि ही है। [illegible] में [illegible] कृषि पर निर्भर था। 1984-85 तक इस प्रतिशत में केवल पांच प्रतिशत की कमी हुई। भारतीय कृषि की एक अन्य विशेषता यह है कि छोटे किसानों की संख्या अधिक है और जोत पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। खेती योग्य जमीन के व्यक्तिगत स्वामित्व की संख्या 1960-61 में 5 करोड़ 7 लाख से बढ़कर 1976-77 में 8 करोड़ 15 लाख [illegible] हजार और 1980-81 में 8 करोड़ 93 लाख 90 हजार हो गई। भारत में कृषि अभी भी काफी हद तक मानसून पर निर्भर करती है, जिससे कृषि उत्पादकता में अस्थिरता बनी रहती है।

भारतीय रिजर्व बैंक ने कृषि ऋण के बारे में अपनी रिपोर्ट में कृषि के विकास में तीन बाधाएं गिनाई हैं - (अ) व्यक्तिगत आधार पर प्रति व्यक्ति जमीन कम होते जाना, (ब) हरित क्रांति वाले उन क्षेत्रों में, जहां धान और चावलों की खेती [illegible] में प्रत्येक साल की जाती है, पानी का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल करना (स) ऊर्जा के क्षेत्र में इतना अधिक सार्वजनिक निवेश होने के बावजूद भी ऊर्जा कृषि के लिए [illegible] बनी हुई है।

[illegible] बाधाओं को दूर करने के लिए [illegible] कदमों को उठाए जाने [illegible] है। [illegible] भूमि और पानी के संरक्षण के [illegible] ध्यान देना होगा। [illegible] के बेहतर प्रबंध [illegible] के बाद खाद्यान्न का [illegible] की ओर भी [illegible] करने पड़ेंगे। बारानी खेती को प्राथमिकता देनी [illegible] सिंचाई वाली भूमि से उत्पादकता बढ़े और [illegible] छोटे [illegible] की उत्पादकता [illegible] ज्यादा ध्यान देना पड़ेगा क्योंकि अब छोटे-छोटे जोतों [illegible] संख्या बढ़ रही है। कृषि में पूंजी निर्माण इतना महंगा होता [illegible] कि [illegible] कृषि के पक्ष [illegible] होगी।

[illegible] नई योजना [illegible] समय-समय [illegible] विकास का अंतिम उद्देश्यों में से एक बताया है। [illegible] के सदस्यों के लिए भी कृषि का विकास उनकी सोच का [illegible] है जो अपने [illegible] गांधीवादी [illegible] ज्यादा पसंद करने [illegible] अर्थव्यवस्था को स्वावलम्बन का मार्ग दे [illegible] रामराज्य का सपना [illegible] ग्रामीण क्षेत्र को [illegible]

अज्ञानता और शोषण का सजीव चित्रण है—सवा सेर गेहूं

ईश्वर के प्रति अटूट आस्था, सरल स्वभाव, भाई-भाई में बंटवारा, किसानों पर जमींदारों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों, गरीब किसान की अपने कर्ज को इसी जन्म में चुकाने की हर कोशिश और महाजनों द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी उसे अपने चंगुल में फंसाये रखने के सजीव चित्रण का नाम है 'सवा सेर गेहूं'। तमाम पहली भ्रांतियों को तोड़ते हुए सरकार ने पहली बार वृत्त चित्रों के दायरे मे बाहर निकल कर ग्रामीण झांकी का सजीव चित्रण करने का एक सफल प्रयास किया है।

कृषि मंत्रालय के ग्रामीण विकास विभाग ने 'सवा सेर गेहूं' फिल्म निर्माण मुंशी प्रेमचन्द की मूल कहानी को लेकर किया है। आज से लगभग साठ साल पहले लिखी गई यह कहानी भारत के पिछड़ेपन, किसानों के शोषण, उनकी अज्ञानता और उन पर होने वाले अत्याचारों को दर्शाती है जो आजादी के चार दशकों बाद भी आज हमें इन गांवों में देखने को मिलते हैं। स्वयं मुंशी प्रेमचन्द ने इस कहानी के बारे में लिखा है कि 'पाठक इस कहानी को कपोल कल्पित न समझें।'

सरकार ने इस कहानी को लेकर फिल्म बनाने का जो निर्णय लिया है उसके पीछे एक मात्र मुद्दा यही रहा है कि जहां एक ओर दर्शकों को ग्रामीण जीवन की वास्तविकता से परिचित कराया जाए वहीं दूसरी ओर सरकार द्वारा उनके लिए इन शोषणों से बचने के लिए चलाए जा रहे कार्यक्रमों से भी अवगत कराया जाए।

सवा सेर गेहूं का निर्देशन गुलबहार ने किया है और संगीत सुप्रसिद्ध संगीतकार सलील चौधरी ने दिया है। चलचित्र के मुख्य पात्र शंकर की भूमिका ओमपुरी ने बखूबी निभायी है। फिल्म का घटनाक्रम इस प्रकार है :

शंकर नाम का एक सीधा साधा किसान है जिसे न ठग विद्या आती है और न ठगे जाने की चिन्ता ही है। भोजन मिला तो खा लिया, नहीं मिला तो चने चबाकर पानी पी लिया। परन्तु यदि कोई अतिथि—साधु महात्मा द्वार पर आ जाए तो उसका पूरा सत्कार करता है।

एक बार उसके घर एक साधु आ जाता है। उस दिन शंकर के घर में जौ के अलावा और कुछ नहीं होता और विवश शंकर

शंकर की भूमिका में ओमपुरी

को विप्र महाजन के यहां से सवा सेर गेहूं उधार लेने पड़ते हैं जो अन्ततः उसके परिवार की बंधुआ गुलामी और मजदूरी का कारण बन जाते हैं।

अपनी धूर्तता और मौके का फायदा उठाने में माहिर विप्र इस बारे में सात साल तक चुप्पी साधे रहता है और फिर एक दिन अचानक जाकर शंकर को धर दबोचता है। महाजन कहता है—"शंकर तेरे खाते में साढ़े पांच मन गेहूं कब से पड़े हैं चुकता क्यों नहीं करता"। यह सुन कर शंकर के पावों तले की जमीन खिसक जाती है। शंकर कहता है महाराज मैंने तो सवा सेर गेहूं

(शेष पृष्ठ 49 पर)

वनों का राष्ट्रीय जीवन में महत्व

हरिश्चन्द्र सिंह

मनुष्य का प्रथम वास स्थान वन ही था। सभ्यता के विकास के साथ आज के प्रौद्योगिक युग तक वनों को काटकर मैदान बना लिया गया है। वनों के कम होने का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव हमारी अर्थव्यवस्था, जलवायु और संस्कृति पर पड़ रहा है। अब यह विशेष रूप से अनुभव किया जा रहा है कि उन्नति और प्रगतिशील होने का तात्पर्य यह नहीं है कि देश में वनों का सफाया कर दिया जाये।

वनों के अनेक तरह के उपयोग हैं। यह एक शक्तिशाली और मितव्यय वस्तु है, जो जलवायु को परिमित बनाकर उसकी उग्रता को शमन करते हैं। यह कृषि के लिए परमावश्यक है, क्योंकि जीवन दायिनी बरसात का स्रोत है। भूमि को बहाव से बचाता है और पानी के बहाव को नियंत्रित करता है। इसके फलस्वरूप बाढ़ कम आती है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि सातवीं योजना के अन्त तक सभी नदी-घाटी योजनाओं और जल विद्युत योजनाओं के पूरा हो जाने पर देश का करीब-आधा भूभाग जलाशयों में परिणित हो जायेगा। इन जलाशयों में बरसात के पानी के साथ मिट्टी बह कर न जाये, इसके लिए यह आवश्यक है कि उनके चारों ओर, विशेषकर तलहटी में वन और वृक्ष बड़े पैमाने पर लगाये जायें। इससे वे मिट्टी से भरेंगे नहीं और उनसे सिंचाई के लिए पानी बिना किसी लागत के बहुत समय तक मिलता रहेगा।

इसके अतिरिक्त वन हमारे सभी प्रौद्योगिक विकास के मुख्य आधार हैं। सभी प्रकार के उद्योगों की स्थापना के लिए उनकी आवश्यकता पड़ती है। साथ ही मकान, ईंधन, घरेलू उपयोग की चीजों, माचिस, रेल डिब्बों के निर्माण, कत्था, लोह, रेयन, कागज और साबुन उद्योग के लिए वनों के विभिन्न प्रकार के उपजों की आवश्यकता होती है।

रोजगार सम्भावना

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में वनों का बहुत महत्व इस वजह से है कि इससे लोगों को रोजगार मिलता है। वनों के विकास क्रम के अन्तर्गत 10 हजार लोगों को काम मिलता है। वनों के जैसे राष्ट्रीय सम्पत्ति की देखभाल और प्रशासनिक कार्यों के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की स्थायी तौर पर जरूरत पड़ती है। योजना प्रायोजकों का ऐसा अनुमान है कि देश भर में वनों के विभिन्न उद्यमों में 8 लाख लोगों को प्रतिवर्ष काम मिलता है।

इसके अतिरिक्त, वनों से उच्च और मध्यम स्तर के कच्चे माल मिलते हैं जो विभिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए आवश्यक होते हैं। ऐसे उद्योगों में लाखों लोग स्थायी तौर पर काम करते हैं। कुटीर उद्योग तो पूर्ण रूप से वनों के उत्पादन पर निर्भर करते हैं। इससे लोग अपने बेकार समय में अतिरिक्त आय कमाते हैं। इसमें से रेशम के कीड़े पालना, लाह तैयार करना, मोम और गोंद बनाना और एक विशेष प्रकार के घास में से तेल निकालना प्रमुख हैं। कुछ आधुनिक तकनीकी विकास के कारण ये कुटीर उद्योग पूरे समय के उद्योग बन गए हैं और हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

लकड़ियों का उपयोग

भारतीय लकड़ियों का उपयोग देखकर आपको बहुत कौतूहल होगा। भारतीय देवदार और सरों की लकड़ी का हवाई जहाज; बबूल, साल, देवदार, शीशम और कुछ ऐसी ही जातियों की लकड़ियां, कृषि औजारों जैसे कुल्हाड़ी, हथियारों के मूठियों, नाव और जहाज, छपाई और नक्काशी चित्र, रेल डिब्बों और पटरियों में विशेष रूप से आते हैं। फर्नीचर, लकड़ी के कमरे और सन्दूक आदि के लिए टीक, शीशम और अखरोट की लकड़ियां काम में लायी जाती हैं। भारतीय लकड़ियों का प्रयोग तख्ता (प्लाईवुड) बनाने के लिए बहुतायत से किया जा रहा है और इसमें आम, सकेल, तनु आदि की लकड़ी काम में लाते हैं। खेल के सामान बनाने के लिए अखरोट और शहतूत की लकड़ी का उपयोग करते हैं।

छोटे-छोटे उत्पादन

वृक्षों और वनों के उत्पादनों की हमारे देश में विविधता एवं अधिकता है। तीन हजार से भी अधिक किस्म के वृक्ष और पौधे हमारे वनों में होते हैं। इसके अलावा कुछ पशुओं के भी उत्पादन हैं। इनमें कुछ दवा और जहरीले पेड़ पौधे होते हैं। कुछ ऐसे पेड़ भी होते हैं, जिन से राल, मोटे तेल, मोम, स्टार्च, गोंद, लासा, रंग आदि प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त बांस, केन (बेंत), रेशम, घास, मधु, लाख, कत्था पैकिंग और बांधने

के काम में आने वाले सामान हैं, जो हमें वनों के वृक्षों से मिलते हैं।

इनमें से बहुत से उत्पादन ऐसे हैं, जो हमारे आधुनिक उद्योगों के लिए कच्चे सामान प्रदान करते हैं। इससे करोड़ों रुपये मूल्य का उत्पादन होता है। इन में से कुछ चीजें, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए बहुत उपयोगी हैं।

मौसम पर प्रभाव

भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए वनों का महत्व बहुत अधिक है। वन जिस भूमि पर उगते हैं, उसकी उर्वरता शक्ति बढ़ा देते हैं। जलवायु की उष्णता को कम कर उसे मध्यम श्रेणी का बना देते हैं। वृक्ष पानी के पम्प की तरह हैं, जो पानी को अपनी जड़ों के सहारे सोखकर जमीन में नीचे तक ले जाते हैं और गरमी के दिनों में उसे पत्तों के द्वारा बाहर वायुमंडल में छोड़ते हैं। इससे आद्रता बढ़ जाती है। देश के कुछ भागों में जलवायु में जो अचानक परिवर्तन हुए हैं वह वनों और वृक्षों के अविवेक पूर्व काटने से हुए हैं। पदार्थ शास्तकृत वनों के मौसम, जलवायु और कृषि पर पड़ने वाले लाभकारी प्रभाव से सहमत हैं।

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि देश के 25 प्रतिशत भूभाग पर वनों का होना बहुत आवश्यक है। कनाडा में 38.3 प्रतिशत और स्वीडन में 56.5 प्रतिशत भूभाग पर वन हैं। जबकि हमारे देश में 10.1 प्रतिशत भूभाग पर वन हैं। हमारे देश में जो वन सम्पदा है वह कहीं बहुत ज्यादा है और कहीं बहुत कम। गंगा की घाटी में जहां पर देश की सबसे घनी आबादी है, केवल 2 प्रतिशत भूभाग पर वन है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में सभी वन सरकार के नियंत्रण में नहीं है। सरकार को चाहिए कि इसका नियंत्रण शीघ्र अपने हाथ में ले ले।

प्रदूषण निरोधक

वायुमंडल के सूत्र रखने के लिए प्रत्येक स्थान में वृक्षों का पर्याप्त संख्या में होना आवश्यक है। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि जगह-जगह कारखानों तथा मिलों की चिमनियों से निकलने वाला धुंआ तथा गैस और सड़े गले कूड़े-कचरे से उठती हुई विषैली दुर्गन्ध आदि पर्यावरण के लिए गम्भीर समस्याएं पैदा कर रही हैं। शहरों में गंदी बस्तियों में सांस लेने के लिए अच्छी हवा ही नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में मानव स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जरूरी है कि सड़कों के किनारे खाली स्थानों तथा घरों के पास अधिक से अधिक वृक्ष लगाये जायें।

सुरक्षा सैनिक

वनों को बड़े पैमाने पर लगाकर उनकी अच्छी तरह निरन्तर देखभाल करना अत्यन्त आवश्यक है। इससे जमीन की रक्षा और कटाव को रोका जा सकता है। जमीन की उर्वरता बढ़ेगी। रेगिस्तान के बढ़ाव को रोका जा सकेगा। मौसम की उष्णता कम होगी। जलवायु मध्यम श्रेणी का होगा। इससे बरसात का समुचित वितरण अपने आप होगा। संक्षेप में, जिस प्रकार देश की सेना से उसकी सुरक्षा सुनिश्चित रहती है, उस प्रकार वनों और वृक्षों के होने से उपयुक्त कथित बुराईयों से देश की रक्षा भली-भांति की जा सकेगी।

वन महोत्सव का मौसम फिर एक बार आया है। यह हमारी वृक्षों और वनों के प्रति जो हमारी राष्ट्रीय सम्पदा के महान स्रोत हैं, एक भावभीनी श्रद्धांजलि है। यह हमारे राष्ट्र की पुकार का प्रतीक है, जो जनमानस में वनों के प्रति प्रेम भावना की जागृति करने के लिए दी गयी है। आप भी धरती को शस्य श्यामला बनाने वाले इस पर्व में भाग लेकर सफल बनायें। इसमें ही राष्ट्र और समाज का हित निहित है।

104/3643, तिलक नगर, चेम्बूर-400089

(पृष्ठ 47 का शेष)

के बदले में न जाने कितनी बार ज्यादा खलिहानी देकर आपका कर्ज उतार दिया था। हां! आप से यह कहना मुनासिब नहीं समझा; इतने से गेहूं की बात का जिक्र क्या करना, आप स्वयं ही समझ जाएंगे। पर धूर्त महाजन नरक और ईश्वर का वास्ता देकर शंकर को कर्ज को चुकाने पर मजबूर कर देता है।

पर क्या गरीब किसान एक बार कर्ज लेकर उसे कभी चुकता कर पाया है। वो तो बंधुआ मजदूर बन जाता है और ये गुलामी उसकी पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। गरीब किसानों के बीच पनपने वाले महाजन कितने धूर्त और बेईमान होते हैं इसका तो इस बात से ही पता चलता है कि शंकर उसके यहां मजदूरी करते-करते एक दिन उसी के यहां मर जाता है।

फिल्म के अंत में ग्रामीण विकास विभाग द्वारा इन शोषणों से किसान को बचाने वाले कार्यक्रमों का उल्लेख किया है जो निस्संदेह किसान वर्ग को उसे सरकार से मिलने वाले लाभों से परिचित कराता है। ऐसी फिल्म को दर्शा कर ग्रामीण विकास विभाग ने सरकार के कार्यक्रमों के प्रति ग्रामवासियों को जागरूक करने में एक सफल प्रयास किया है। □

समीक्षक : मदन मोहन

पुनावली ग्राम पंचायत ने वृक्षारोपण कार्यों में जोरदार दिलचस्पी

अशोक कुमार यादव

वृक्षारोपण के कार्यों में चित्तौड़गढ़ जिले [illegible] की बड़ीसादड़ी पंचायत समिति क्षेत्र की पुनावली ग्राम पंचायत ने गहरी रुचि दिखाकर अग्रणी होने की [illegible] है। इस पंचायत द्वारा किये गये वृक्षारोपण [illegible] से प्रेरणा लेकर आस-पास की ग्राम पंचायतों द्वारा [illegible] वृक्षारोपण के कार्य हाथ में लिये गये हैं।

पुनावली ग्राम पंचायत क्षेत्र में लगभग डेढ़ सौ बीघा भूमि यों ही बेकार पड़ी हुई थी, और उसमें थोड़ा बहुत चारा पैदा होता था जिसे आस-पास के गांवों के पशु यों ही चर जाते थे। इस तरह से इस बंजर भूमि का कोई उपयोग नहीं था। ग्राम पंचायत के सरपंच श्री नारायण सिंह ने इस बंजर भूमि पर पेड़-पौधे लगाने तथा इसको उपयोगी भूमि बनाने की बात ठान ली। उन्होंने पंचायत समिति के विकास अधिकारी से सम्पर्क किया। सलाह के मुताबिक ग्राम पंचायत ने निर्णय किया और इस बंजर भूमि में से 36 हैक्टेयर भूमि पर वर्ष 1987-88 से सामाजिक वानिकी का कार्य हाथ में लिया।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना मद से इस सामाजिक वानिकी कार्य के लिए पुनावली ग्राम पंचायत को 41 हजार 500 रुपये की धनराशि पंचायत समिति के माध्यम से उपलब्ध करायी। ग्राम पंचायत ने इस राशि से वृक्षारोपण के लिए पौध शाला तैयार करने, गड्ढे खुदवाने तथा फेंसिंग के कार्य हाथ में लिए। पहले वर्ष में इस बंजर भूमि पर 17 हजार पौधे लगवाये गये। वर्ष 1988-89 में 12 हजार तथा वर्ष 1989-90 में 16 हजार पौधे लगवाये गये हैं। इसी प्रकार पंचायत को वर्ष 1987-88 में फेंसिंग तथा वृक्षारोपण कार्यों के लिए अकाल राहत मद से भी 25 हजार रुपये मिले।

ग्राम पंचायत के सरपंच, श्री नारायण सिंह का कहना है कि ग्रामीणों ने आरम्भ में तो इस सामाजिक वानिकी कार्य का विरोध किया और कहते थे कि उनके पशु कहां चरने जायेंगे परन्तु अब परिस्थितियां बदल गयी हैं। ग्रामीण अब स्वयं इस वन क्षेत्र की रक्षा करते हैं। उन्हें अपने पशुओं के लिए अधिक चारा भी मिलता है वहीं बेकार पड़ी भूमि हरी-भरी तो नजर आती है।

पुनावली ग्राम पंचायत के इस सामाजिक वानिकी कार्य में कराये गये वृक्षारोपण में एक हजार नींबू, 250 आंवले, 50 सीताफल, 300 शहतूत आदि के फलदार पौधे भी लगवाये गये हैं वहीं 250 बेर की झाड़ियों पर उन्नत बेर की कलमें चढ़वायी गयी हैं। वृक्षों की देखभाल के लिए ग्राम पंचायत ने दो चौकीदार भी लगाये। बंजर भूमि पर फल-फूल रहे ये पेड़ पौधे आने वाले वर्षों में ग्राम पंचायत का आय का स्थायी जरिया बन जाएंगे। एक ओर जहां घास मिलेगी वहीं लकड़ियां और फलदार पौधों से फल। पर्यावरण में भी सुधार होगा। इस स्थायी आय से पुनावली ग्राम पंचायत में विभिन्न विकास कार्य हो सकेंगे।

पुनावली ग्राम पंचायत द्वारा हाथ में लिये गये इस सामाजिक वानिकी कार्य का यह प्रभाव पड़ा है कि पास की भाणुजा ग्राम पंचायत में भी 30 बीघा क्षेत्र में व खरदेवला ग्राम पंचायत में डेढ़ हैक्टेयर क्षेत्र में सामाजिक वानिकी कार्य आरंभ किये गये। पिंड तथा खेरमालिया ग्राम पंचायतें भी आगे आयी हैं।

जिला सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,

चित्तौड़गढ़

पुस्तक समीक्षा

'पानी की लकीर'—लेखक: सुभाष चन्द्र 'सत्य', प्रकाशक: सुनील साहित्य सदन, ए.-101, उत्तरी घोण्डा, दिल्ली-110053, मूल्य: चालीस रुपये।

"पानी की लकीर" सुभाष चन्द्र 'सत्य' का प्रथम कहानी-संग्रह है, और इन कहानियों को पढ़े जाने के बाद उनके कहानीकार व्यक्तित्व की सटीक छाप मन पर पड़ती है।

संग्रह की दो तीन-कहानियों को छोड़कर शेष लगभग सभी कहानियों में नारी-मन की पीड़ा को कहानीकार ने जिस तीव्र संवेदना से उकेरा है, वह कहानी के 'कथ्य' के प्रति विश्वास जगाता है, और उस कारण कहानी का प्रभाव देर तक और दूर तक मन की कन्दरा में अनुगूंज बनकर तन-मन को मथता प्रतीत होता है।

'अब कुछ नहीं कहना' कहानी में वैधव्य का अभिशाप, भोग रही शालू, 'फिर से' की परित्यक्ता बुद्धो, 'सच्चा झूठ' की शांति, 'सौदा' की छाया और 'आखिरी पर्दा' की सरिता ऐसे ही नारी-पात्र हैं जिनका अस्तित्व कहानी की शक्ति बनकर उभरता है, उसे सार्थकता प्रदान करता है। लेकिन ये नारियां, 'अपनी व्यथा की मानसिकता से त्रस्त हो हार मानकर नहीं बैठ जातीं, नियति और परिस्थितियों के थपेड़े खाकर थककर, सिमट कर नहीं बैठ जातीं, वरन् समय की धारा के विरुद्ध संघर्ष करती सार्थक जीवन जीने की ललक उन्हें प्रेरणा प्रदान करती हैं और यहीं कथाकार सुभाष की कहानियां सार्थक प्रतीत होती हैं। उनकी कहानियों में जीवन के नकारात्मक दर्शन को अभिव्यक्त नहीं किया गया है। उद्देश्य की दशा-दिशा का उन्हें भली-भांति ज्ञान है। ये कहानियां अंधेरे में नहीं भटकातीं, एक स्पष्ट मार्ग-निर्देश देती हैं, समस्या का समाधान प्रस्तुत करती हैं। यह दीगर बात है कि उनके 'समाधान' से हम सहमत न हों, लेकिन यह जरूरी भी तो नहीं! वैधव्य का अभिशाप भोग रही शालू का पुन: विवाह करने के लिए तैयार हो जाना, (अब कुछ नहीं कहना), बाल विधवा शांति का संतान को जन्म देना, (सच्चा झूठा), बुद्धो के बेटे की दीवार गिर कर हुई मृत्यु के बाद यह कहना कि, "मैं फिर से पेड़ लगाऊंगी, नया बाग लगाऊंगी अपनी रानी के लिये" (फिर से पृ. 45), ये तथ्य इन नारी पात्रों की जीवन के प्रति जिजीविषा को प्रकट करते हैं।

'और प्याला टूट गया' कहानी घर की चार-दीवारी से बाहर निकल नौकरी करने वाली नारी और हमारे समाज के 'बीमार परिवेश' की कहानी है। इस कहानी में चरित्र नहीं, वातावरण प्रधान हो गया है। 'बेबस' कहानी में एक रिक्शा-चालक की विवशता और संघर्ष को जिस मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है, वह सर्वहारा वर्ग के इस इंसान को गरिमा प्रदान करता है। कहानी का अंत इसका 'क्लाइमक्स'' है, जो दिल को छू लेता है।

दो शब्द कथाकार सुभाष की भाषा—वर्णशैली के संबंध में भी! "नारी बिना दवा लगाये भी अपने घाव की पीड़ा सह सकती है, लेकिन घाव दिखाये बिना रहना उसके लिये संभव नहीं", (पृ. 14) तथा "अज्ञान का यह पर्दा कितना ही सुखद या शीतल क्यों न हो, वह स्थायी नहीं होता" (पृ. 74) जैसे सूक्ति वाक्यों का कथा-लेखक ने भरपूर उपयोग किया है, जिससे कहानी का मंतव्य न केवल अधिक सुस्पष्ट हो उठता है, बल्कि कथाकार की जीवन-दृष्टि को भी उजागर करता है। "गमले में लगे फूलों से सुगंध की बजाय जहरीली गैस रिसती प्रतीत हुई" (पृ. 75) और "फ्रिज में जमी बर्फ की ट्रे पर पानी डालने से जैसे उसमें जमी बर्फ अलग हो जाती है, उसी प्रकार सरिता के इस वाक्य से उसकी जड़ता में कंपन आया" (पृ. 77) जैसे घ्राण और दृश्य बिम्बों की पच्चीकारी जहां उनकी कहानियों के वर्णन को अनुपम सौन्दर्य और भावों को अधिक सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करती है, वहीं भाषा शिल्प की शक्ति को भी प्रकट करती है। □

समीक्षक : डा. प्रेम प्रकाश भाटिया

एफ/238/3,

एण्ड्रयूज गंज, नई दिल्ली-110049

गुणकारी कन्द-प्याज

डा. उषा अरोड़ा

प्याज खाद्य-वस्तु के रूप में प्रयुक्त होने वाला कन्द है। प्याज की तीक्ष्ण गंध के कारण बहुत-से परम्परावादी लोग इसका प्रयोग नहीं करते हैं। प्याज को कुछ लोग तामसिक द्रव्य की संज्ञा देते हैं। प्रायः सभी घरों और होटलों में प्याज का प्रचुर प्रयोग होता है। सब्जी बनाने के लिए मसाले के रूप में घर-घर में इसका उपयोग किया जाता है।

प्याज की खेती के लिए गर्म तथा समशीतोष्ण जलवायु उपयुक्त है। प्याज हर प्रकार की भूमि में पैदा होती है। इसकी उपज के लिए गोबर की खाद, सुपर फास्फेट, नाइट्रोजन और पोटाश डाल देने से खेती अच्छी होती है। प्याज दो प्रकार की होती है—लाल और सफेद। दोनों ही खाने में प्रयुक्त होती हैं पर सफेद प्याज अधिक गुणकारी है।

प्याज में जल 86 प्रतिशत, प्रोटीन 1.2 प्रतिशत, वसा 0.1 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 116 प्रतिशत, विटामिन ए 25 इ. यू. प्रति 100 ग्राम, विटामिन बी 50 इ. यू. प्रति 100 ग्राम तथा विटामिन सी 11 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम पाया जाता है। प्याज में खनिज लवण 0.3 प्रतिशत होता है। प्याज में कैल्शियम 0.18 प्रतिशत, लोहा 1.2 मिलीग्राम प्रतिशत तथा प्रति औंस 14 मिलीग्राम कैलोरी पाई जाती है। इसके अतिरिक्त प्याज में पोटोशियम, गन्धक, क्लोरीन तथा आयोडीन पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

आयुर्वेद मतानुसार प्याज बहुत ही लाभकारी कन्द है। राजनिघण्टु के मतानुसार प्याज चरपरी, बलकारी, कफपित्त को नष्ट करने वाली, गुरू, शक्तिप्रद, रुचिकर, स्निग्ध और वमन विकार का विनाश करने वाली है। चरक सूत्र स्थान अध्याय 27 में प्याज के गुण इस प्रकार कहे गये हैं—प्याज कफवर्द्धक, वायुनाशक होता है, परन्तु पित्त को हरता नहीं। आहार के संस्कार में प्रयुक्त होने वाला बलकारक, भारी, वृष्य तथा रुचिकर होता है। हारीत संहिता के अनुसार-प्याज वात-कफनाशक, तथा शूल और गुल्म नाशक है।

शरीर के अन्दर होने वाले वात, पित्त और कफ तीनों के विकारों में इससे प्रयोग से लाभ होता है। इससे वात की कमी होती है, पित्त बाहर निकल जाता है और कफ का नाश होता है। तरुण मनुष्य की जीर्ण कफ रोगों में जिस प्रकार गुग्गुल लाभ करता है, उसी तरह दूध पिलाने वाली माताओं के कफ विकार में प्याज लाभदायक है। यह दमें में भी लाभकारी है।

पाचनेन्द्रियों की क्रिया शक्ति बढ़ाकर मल साफ लाने में प्याज मदद करता है। चर्म रोगों में भी प्याज का रस कैल्शियम सल्फाइड की अपेक्षा विशेष गुणकारी है। गांठ, फोड़े-फुन्सी, मुहांसे, नासूर आदि में इसे घी में पकाकर बांधने अथवा इसका रस लगाने से अच्छा लाभ होता है।

प्याज का सेवन करने से अरुचि, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कब्ज आदि उदर-विकार दूर होते हैं और भोजन का उत्तम परिपाक होता है। इससे उदर कृमि नष्ट होते हैं तथा पायरिया आदि दन्त विकार नहीं होते हैं। प्याज को खाने से लू नहीं लगती। लू के समय बाहर निकलने पर जेब में प्याज की गांठ रखने से लू लगने की सम्भावना नहीं रहती। प्याज के रस में सरसों का तेल मिलाकर मालिश करने से लीख, जुएं मर जाती हैं। इस प्रकार प्याज का उपयोग थोड़ा-थोड़ा प्रतिदिन करते रहने से बहुत-से विकार दूर हो जाते हैं।

ए-5, एन. बी. सी. कालोनी, जयपुर

सामाजिक वानिकी के लिए भूमि के हर उपलब्ध टुकड़े का उपयोग करना होगा। सड़कों, नहरों, रेल की पटरियों आदि के दोनों ओर काफी वृक्षारोपण संभव हैं।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN:708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और